

वर्ष 4 अंक ४

जुलाई 2009

मूल्य विमर्श

नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर सार्थक संवाद की अर्द्धवार्षिक पत्रिका



मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र
(Malaviya Centre for Ethics & Human Values)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सम्पादकीय

“एक अच्छी व्यवस्था एक अच्छे मनुष्य का निर्माण करती है और अच्छे मनुष्य मिलकर एक अच्छी व्यवस्था का।” जीवन के अनेक प्रसंगों के आधार पर इस मान्यता को प्रमाणित किया जा सकता है। किसी व्यवस्था के साथ कार्य करने वाले लोगों और व्यवस्था से बाहर रहकर कार्य करने वाले लोगों से भी बातचीत के आधार पर यह बात पुष्ट होती है। मैं इस मान्यता के पक्ष में अपने एक अनुभव को रखना चाहूँगा।

हम कुछ मूल्य प्रेमियों ने शिक्षा एवं सामाजिक व्यवस्था में मानव मूल्यों की स्थापना एवं कुछ सेवा कार्यों से सम्बन्धित रचनात्मक कार्यक्रमों के संचालन हेतु सन् 2004 में एक संस्था का गठन किया। हमने भारत सरकार के सोसाइटी अधिनियम 1860 के अनुसार इस संस्था का पंजीकरण भी कराया। संस्था के गठन के पाँच वर्ष बाद जब मैं संस्था का नवीनीकरण कराने हेतु सम्बन्धित विभाग गया, तो मुझे कुछ आवश्यक प्रपत्रों एवं 260 रु० नवीनीकरण शुल्क के साथ पत्रावली जमा करने का आदेश दिया गया। मैंने इन सभी प्रपत्रों के साथ पत्रावली जमा कर दी। साथ ही वाराणसी क्षेत्र का कार्य देखने वाले कर्मचारी से नवीनीकरण प्रक्रिया से सम्बन्धित कार्य के सम्पन्न हो जाने के सन्दर्भ में पूछा तो, उसने एक सप्ताह के बाद आने को कहा। मैं ठीक एक सप्ताह बाद उस कर्मचारी से मिला तो, उसने पुनः एक सप्ताह बाद आने का आदेश दिया। इस तरह मुझे सम्बन्धित कर्मचारी द्वारा लगभग दस सप्ताह इस कार्य हेतु बुलाया गया। लेकिन संस्था के नवीनीकरण से सम्बन्धित पत्रावली को एक बार भी नहीं देखा गया। जब मैंने सम्बन्धित कर्मचारी से यह पूछा कि आप मुझे बार-बार बुलाकर भी कार्य क्यों नहीं करते, तो उसने उत्तर दिया कि आप बी० एच० यू० से ही तो आ रहे हैं, कहीं राबर्ट्सगंज से तो नहीं।

मैंने इस बीच सम्बन्धित विभाग के वरिष्ठ अधिकारी से भी भेंट कर अपनी समस्या को रखने का प्रयास किया, लेकिन उनसे भी भेंट करना सम्भव नहीं हुआ। जब अन्य स्रोतों से इस समस्या के समाधान हेतु जानकारी प्राप्त की, तब मुझे पता चला कि जब तक निर्धारित शुल्क से दस गुना सुविधा शुल्क नहीं दिया जायेगा, तब तक सम्बन्धित पत्रावली पर कोई भी कार्यवाही सम्भव नहीं है। चूँकि हम लोगों ने मूल्यों से सम्बन्धित कार्यक्रमों को संचालित करने हेतु इस संस्था का गठन किया था, इसलिए सुविधा शुल्क देना हमारे आदर्शों के विपरीत था। इसलिए मैंने इस संदर्भ में अपने एक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी से मदद मांगी। मेरे ये मित्र जिलाधिकारी पद पर नियुक्त थे, इसलिए उन्होंने तुरन्त सम्बन्धित विभाग के अधिकारी का फोन न० खोजकर हमारे कार्य के संदर्भ में पहल की। साथ ही मुझे सम्बन्धित अधिकारी से फोन पर बात करने को कहा। मैंने इन अधिकारी महोदय से फोन वार्ता के साथ-साथ मिलने का कार्यक्रम तय किया। जब मैं इन अधिकारी महोदय से मिला और बातचीत की तो मेरे सभी नकारात्मक विचार ही परिवर्तित हो गये।

उन्होंने बताया कि मैं जब विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था, तब आपकी तरह मूल्यनिष्ठ जीवन जीने व कार्य करने के लिए संकल्पित था। लेकिन जब से इस व्यवस्था का भाग बना हूँ, तब से मेरे पास एक व्यवहारिक व्यक्ति बनकर जीने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

इस घटना से यह स्पष्ट है कि एक मूल्यहीन व्यवस्था एक मूल्यनिष्ठ व्यक्ति को भी बदल देती है। जो व्यक्ति इस व्यवस्था के साथ नहीं बदलते वे औरों से भिन्न एवं विशेष होते हैं। क्या इस तरह की मूल्यहीन व्यवस्था में परिवर्तन सम्भव है ? उत्तर होगा हाँ, यदि वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तन किया जाय। क्योंकि सभी ऊँचे पदों पर आरूढ़ व्यक्ति इन्हीं शिक्षालयों की उपज हैं।

इस सन्दर्भ में प्रो० अजित नारायण त्रिपाठी जी का यह कथन बहुत ही प्रासंगिक है कि “स्वतंत्रता के बाद हमने जिस शिक्षा व्यवस्था को अपनाया उसमें युवाओं के चरित्र निर्माण एवं समन्वित व्यक्तित्व विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। इसी का दुष्परिणाम है, जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं मूल्य-विहीनता”। वर्तमान शिक्षालय मात्र किसी विषय-विशेष का ज्ञान प्रदान करने अथवा विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास का ही कार्य कर रहे हैं। वे अपने विद्यार्थियों को अच्छे नागरिक बन सकने, अपने समाज और संस्कृति से जुड़ सकने अर्थात् एक उत्कृष्ट मानव बनने की प्रेरणा देने में असफल हैं। यही कारण है कि इन शिक्षालयों से उच्च-शिक्षा प्राप्त एवं उच्च पदों पर आरूढ़ व्यक्ति अपने जीवन एवं कार्यक्षेत्र में ‘नैतिक एवं जीवन मूल्यों’ से सम्बन्धित समस्याओं का मूल्यगत समाधान निकालने में असमर्थ दिखाई पड़ते हैं। इसी का परिणाम है कि स्वतंत्रता के 62 वर्ष बाद भी हमारा देश भौतिक एवं नैतिक दृष्टि से उतनी उन्नति नहीं कर सका, जितनी होनी चाहिए थी। आज भी हमारे देश में एक शोषण मुक्त, कल्याणकारी एवं मानवोचित समाजिक व्यवस्था का निर्माण कर पाना दुःस्वप्न बना हुआ है।

इसलिए आज सर्वाधिक जरूरत है एक ऐसी मूल्य-परक शिक्षा व्यवस्था की, जो देश के भावी कर्णधारों को एक जिम्मेदार, कर्तव्य-परायण, दूरदर्शी एवं न्यायप्रिय नागरिकों के रूप में तैयार कर सके। मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र विगत पन्द्रह वर्ष से इसी दिशा में एक सक्रिय भूमिका निभा रहा है। केन्द्र के द्वारा इस दिशा में किए जा रहे प्रयागों से देश के शिक्षाविदों, शिक्षार्थियों को जोड़ने एवं मूल्य-चिंतन की प्रक्रिया का भागीदार बनाने के लिए यह ‘मूल्य-विमर्श’ पत्रिका प्रकाशित की जा रही है। हम आप सभी को एक गौरवशाली समृद्ध भारत के निर्माण हेतु साथ चलने एवं मिलकर कार्य करने के लिए आमंत्रित करते हैं।

-धर्मेन्द्र कुमार मिश्र

स्वार्थ ही अनैतिकता और स्वार्थहीनता ही नैतिकता है।

उच्च-शिक्षा, चरित्र-निर्माण एवं समन्वित व्यक्तित्व विकास

प्रो० अजित नारायण त्रिपाठी

शिक्षा का तात्पर्य मात्र किसी विषय-विशेष का ज्ञान प्रदान करना, अथवा विद्यार्थियों का बौद्धिक विकास करना ही नहीं है। उसका गुरुतर दायित्व है युवाओं के व्यक्तित्व का समन्वित विकास करना ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें, अपने समाज और संस्कृति से जुड़ सकें और उत्कृष्ट मानव बनने की प्रेरणा ले सकें। ऐसे उत्कृष्ट और समन्वित व्यक्तित्व के आधार पर ही समस्त सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय प्रगति संभव होती है। यह विचार महामना के शिक्षा-दर्शन का केन्द्रीय मूल्य था, और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। विश्वविद्यालय की स्थापना के पूर्व, 1905 में प्रकाशित उसकी परिचायिका में उन्होंने लिखा था,

“मात्र आर्थिक-औद्योगिक विकास से जन-जीवन में सुख और समृद्धि नहीं आ सकती।व्यक्ति और समाज दोनों के उत्थान के लिए बौद्धिक क्षमता से भी अधिक आवश्यक है चारित्रिक विकास और भौतिक उन्नति से भी अधिक आवश्यक है नैतिक उन्नति।और आर्थिक-औद्योगिक विकास भी तभी संभव है जब परस्पर सहयोग, विश्वास, सत्यनिष्ठा, वचनबद्धता, न्याय प्रियता आदि सद्गुण हमारे व्यक्तित्व के अंग हों।अतः प्रस्तावित विश्वविद्यालय का एक मुख्य उद्देश्य होगा, चरित्र निर्माण। यहाँ के स्नातक मात्र कुशल अभियंता, वैज्ञानिक, चिकित्सक, शास्त्रज्ञ ही नहीं होंगे वरन् वे चरित्रवान, सत्यनिष्ठ एवं देशभक्त भी होंगे।”

शिक्षा द्वारा चरित्र निर्माण के इस विचार को स्वतंत्र भारत की शिक्षा व्यवस्था में भी समुचित स्थान नहीं दिया गया। इसका दुष्परिणाम है, जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं मूल्य-विहीनता, जिसके चलते हम एक शोषणमुक्त, कल्याणकारी एवं मानवोचित समाज बनाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। अतः आज यह और भी अधिक आवश्यक है कि चरित्र निर्माण एवं समन्वित व्यक्तित्व विकास को शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य माना जाय और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा-व्यवस्था में समुचित परिवर्तन किए जाय।

समन्वित व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य है एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण जिसके सभी पक्ष उन्नत हों। मानव व्यक्तित्व का एक प्रमुख पक्ष है बौद्धिक-क्षमता, योग्यता एवं कार्य-कुशलता। इस योजना के आधार पर हम अपनी आजीविका, वृत्ति, व्यापार आदि के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करते हैं, भौतिक समृद्धि एवं सम्मान प्राप्त करते हैं। दूसरी ओर, ऐसे ही कुशल व्यक्ति ही सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में अपना योगदान देते हैं, और सामाजिक-आर्थिक प्रगति के सशक्त कारक बनते हैं। उनकी बौद्धिक क्षमता इतनी उत्कृष्ट होनी चाहिए कि वे नए विचारों को, नए अविष्कारों को, नयी व्यवस्थाओं को, नयी सोच को जन्म दे सकें। कहना न होगा कि ऐसी क्षमता नोट्स लिखा देने से नहीं आती। इसे प्राप्त करने के लिए पठन-पाठन, परीक्षा, आदि की शैली में व्यापक परिवर्तन करने

होंगे। सबल और सफल व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है, सभी के साथ सुमधुर, मैत्रीपूर्ण, संबंध बनाकर, मिल-जुल कर रहने और कार्य करने का कौशल। इस कौशल के विकास में हमारी सूझ-बूझ के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं और भावनाओं का अधिक महत्व होता है। इसके लिए आवश्यक है कि सहयोग, सहकारिता, पारस्परिकता आदि मूल्यों को समझा जाय और उन्हें व्यक्तित्व का अंग बनाने का प्रयास किया जाय। इनके अभाव में अपनी व्यक्तिगत योग्यता के गर्व और आहंकारिक भाव के कारण, प्रतिभावान व्यक्ति भी एक 'टीम' बनाकर काम करने में प्रायः असफल हो जाते हैं। यह हमारी एक बड़ी कमजोरी है। उच्च शिक्षा प्राप्त भारतीयों में इस 'टीम' भावना के अभाव पर कई लोगों ने सशक्त टिप्पणियां की हैं। इस कमी को दूर करने का प्रयास भी शिक्षा के माध्यम से ही होना चाहिए।

बौद्धिक और भावनात्मक पक्षों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ व्यक्तित्व का तीसरा पक्ष है, हमारा व्यक्तिगत चरित्र और हमारी सामाजिक नैतिकता। चरित्र का तात्पर्य उन सद्गुणों के समुच्चय से है जो हमारे जीवन व्यवहार के सभी पक्षों में दिखाई देते हैं। ये ही व्यक्ति की असली पहचान होते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में भी ईमानदारी, सत्य-वादिता, वचन-बद्धता, न्याय-प्रियता, सरलता, निरहंकारिता, परार्थ-प्रवृत्ति आदि चारित्रिक सद्गुणों का प्रायः अभाव ही देखा जाता है। आज चरित्रवान नहीं 'चतुर' व्यक्तियों का बाहुल्य हो रहा है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज की प्रचलित शब्दावली में सच्चरित्र, मूल्यनिष्ठ व्यक्तियों को 'अव्यावहारिक', 'मूर्ख' या 'बिचारे' शब्दों से संबोधित किया जाता है।

नैतिकता का महत्व व्यक्तिगत जीवन से भी अधिक सामाजिक जीवन में है। एक अच्छा, मानवोचित समाज बनाने के लिए आवश्यक है कि उसके सदस्यों की, विशेषतः समाज संचालन में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले उच्च शिक्षा प्राप्त वर्ग की, सामाजिक-नैतिक चेतना सुविकसित हो। इस चेतना के अभाव में आज का शिक्षित वर्ग अपने अधिकारों की बात अधिक करता है, अपने कर्तव्यों की कम। उसका ध्यान इस पर अधिक होता है कि समाज को उसे क्या देना चाहिए, इस बात पर नहीं कि उसे समाज को क्या देना चाहिए। नैतिक चेतना हमें अपने सामाजिक और नागरिक दायित्वों और कर्तव्यों का बोध कराती है और उन्हें उत्साहपूर्वक निभाने की प्रेरणा देती है। ऐसी भावना से प्रेरित व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र में अथवा सामाजिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक जीवन में प्राप्त स्थान को मात्र आजीविका का या अपना प्रभुत्व स्थापित करने का साधन नहीं मानते, बल्कि उसे अपने ज्ञान और कौशल द्वारा समाज के उत्थान में अपना योगदान देने का अवसर मानते हैं। इस सामाजिक-नैतिक चेतना का विकास करना उच्च शिक्षा का प्रमुख दायित्व होना चाहिए।

व्यक्तित्व का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है जिसका सम्बन्ध हमारी इच्छा शक्ति, सक्रियता, गतिशीलता और कुछ कर दिखाने के उत्साह से है। ऐसे व्यक्तित्व वाले लोग अपने जीवन की बागडोर स्वयं संभालते हैं। वे परमुखापेक्षी नहीं होते। अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं के लिए वे परिस्थितियों को, व्यवस्थाओं को, इतिहास को, बाहरी या छिपी हुई ताकतों को कोसते नहीं रहते, बल्कि अपने पर विश्वास कर उनका समाधान ढूंढने के

लिए तत्पर रहते हैं। वे यथास्थिति-वादी नहीं होते, बल्कि परिवर्तन, उत्थान के लिए सदैव सचेष्ट रहते हैं। इनमें जीवन के प्रति सकारात्मक उत्साह होता है। यही उत्साह औरों में भी पैदा कर देते हैं। ऐसे सबल व्यक्तित्व के लोग जीवन के सभी क्षेत्रों में कुशल नेतृत्व प्रदान करते हैं, आगे बढ़ने की नयी दिशाएं, नए रास्ते ढूंढ़ निकालते हैं, नयी संस्थाओं और नयी व्यवस्थाओं का निर्माण करते हैं।

इन सभी पक्षों को मिलाकर 'समन्वित व्यक्तित्व' का विकास होता है। ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे पूज्य महामना मालवीय जी। उनके महान व्यक्तित्व में बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक तथा मानवीय पक्ष सभी प्रकार से समुन्नत थे। ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व के संपर्क में आकर कोई भी उनके प्रेरणा-प्रभाव से अछूता नहीं रह पाता था। इसी कारण महामना के जीवन में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने अनेक विभूतियों को जन्म दिया। व्यक्तित्व-निर्माण की इस परम्परा को पुनर्जीवित करना विश्वविद्यालय परिवार के हम सभी सदस्यों का दायित्व है। शिक्षा के माध्यम से चरित्र-निर्माण, और नैतिक तथा आदर्शोन्मुख जीवन जीने की प्रेरणा देने के विचार की चर्चा आज 'मूल्य-शिक्षा' या 'मूल्योन्मुख शिक्षा' के रूप में की जा रही है। इस विषय पर कई राष्ट्रीय गोष्ठियां आयोजित की जा चुकी हैं। शिक्षा-नीति एवं शिक्षा आयोगों की रिपोर्टों में भी इस विचार पर पर्याप्त बल दिया गया है। किन्तु चर्चाएं मात्र, 'हमारे यहां यह कहा गया है, हमारे यहां वह कहा गया है', आदि कह कर ही समाप्त हो जा रही हैं। कोई ठोस कार्यक्रम उभर कर सामने नहीं आ रहा है। मूल्य-शिक्षा को कार्यान्वित करने के कुछ प्रयास विद्यालयों के स्तर पर हो रहे हैं, किन्तु वे

भी आधे मन से। यह विचार भी प्रायः सुनने को मिलता है कि मूल्य-शिक्षा का प्रयत्न परिवारों में तथा शिक्षा के प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर ही होना चाहिए। उच्च शिक्षा में इसके लिए कुछ खास नहीं किया जा सकता। संभवतः इसी कारण विश्वविद्यालय स्तर पर मूल्य-चिंतन पर तथा मूल्य-शिक्षा दोनों के लिए विशेष उत्साह नहीं दिखता। किन्तु यह विचार भ्रामक है। आज के बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन में उठने वाली नयी मूल्यगत समस्याओं का तार्किक-सैद्धान्तिक विश्लेषण करना, उनका समाधान ढूंढ़ना, परम्परागत जीवन-दृष्टि और मूल्यदृष्टि का आधुनिक जीवन से तादात्म्य स्थापित करना, और आज के मानवीय मूल्य परम्परा से उनका तालमेल बिठाना, आदि का काम विश्वविद्यालय के विद्वानों, विचारकों द्वारा ही हो सकता है। और ऐसा करना उनका सामाजिक, नैतिक और अकादमिक दायित्व भी है। अतः यह आवश्यक है कि आज के युगानुरूप मूल्यानुशीलन को विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययन, शोध आदि की एक विद्या के रूप में स्वीकार किया जाय।

मानव-मूल्य, जीवन-मूल्य, नैतिक-मूल्य आदि से जुड़े विषयों को विश्वविद्यालयों के औपचारिक पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए। पिछले कुछ दशकों के आधुनिक मूल्य चिंतन ने कई ऐसे विषयों को क्रमबद्ध रूप से विकसित किया है। प्रायः सभी पाश्चात्य विश्वविद्यालयों ने और कुछ एक भारतीय विश्वविद्यालयों ने तथा उच्च शिक्षा के अन्य संस्थाओं ने इन विषयों के पठन-पाठन की व्यवस्था की है। ऐसे कुछ विषयों के शीर्षक हैं - Human Value, Professional Ethics, Business Ethics, Environmental Ethics, Technol

ogy, Society and Culture, Science and Humanism, आदि। इन विषयों को यथावत ग्रहण कर लेने के बजाय इन्हें भारतीय मूल्य चिंतन की परम्परा से जोड़ करके, और इस प्रकार अधिक समृद्ध करके, विकसित करने की आवश्यकता है। साथ ही उन्हें आधुनिक भारतीय जीवन के यथार्थ से भी जोड़ने की आवश्यकता है, ताकि वे आज की हमारी मूल्यगत समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकें। ये विषय विज्ञान तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों के लिए अधिक आवश्यक हैं, क्योंकि वे मानविकी तथा सामाजिक विज्ञान के विषयों से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली ज्ञान की सभी विधाएं मानव और समाज हित के लिए विकसित की गई हैं, चाहे वह अर्थशास्त्र हो या रसायन अभियांत्रिकी। ज्ञान के इन मानवीय और सामाजिक पक्षों को विद्यार्थियों के सामने प्रभावी तरीके से रखा जाना चाहिए। इसके अभाव में प्रायः यह लगने लगता है कि पढ़ाई जा रही ज्ञान-धारा सिद्धान्तों, सूत्रों और उनके बौद्धिक ताने-बाने का जाल मात्र है। इसका जीवन से, और विशेष कर जीवन मूल्यों से कोई सरोकार नहीं है। सभी विषयों में, विशेषतः मानविकी और सामाजिक विज्ञान के विषयों में, पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु में अनेकानेक ऐसे बिन्दु हैं जिनका विस्तार और जिनकी व्याख्या जीवन मूल्यों तथा नैतिक-सामाजिक मूल्यों के रूप में की जा सकती है। विषयों को इस प्रकार से पढ़ाने के लिए शिक्षकों को अलग से प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पड़ सकती है। इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक विषय का पठन-पाठन अपने आप में मूल्योन्मुखी शिक्षा के रूप में किया जा सकता है।

औपचारिक पाठ्यक्रमों के साथ ही साथ अनौपचारिक कार्यक्रमों के माध्यम से चरित्र निर्माण, समन्वित व्यक्तित्व विकास तथा मूल्य-शिक्षा की प्रक्रिया को और प्रभावी बनाया जा सकता है। खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन, वाद-विवाद प्रतियोगिता, राष्ट्रीय सेवा-योजना, आदि की गतिविधियाँ विश्वविद्यालयों में प्रायः शिथिल होती जा रही हैं। उन्हें पुनर्जीवित करना होगा। वह भी मूल्य शिक्षा और व्यक्तित्व विकास के कारक के रूप में न कि मात्र मनोरंजन के रूप में। सामाजिक-नैतिक चेतना के विकास के लिए व्याख्यानों, गोष्ठियों, कार्यशालाओं और शिविरों का आयोजन अधिक प्रभावी होता है। इनमें प्रस्तुती देने के लिए और विद्यार्थियों से परिसंवाद स्थापित करने के लिए विश्वविद्यालय के विद्वानों के साथ-साथ समाज के विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में विशिष्ट योगदान देने वाले व्यक्तियों को भी आमंत्रित करना चाहिए। मालवीय भवन स्थित 'मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र' इस प्रकार की छः सप्ताह की एक कार्यशाला प्रतिवर्ष आयोजित करता है, जिसका शीर्षक है 'जीवन मूल्य एवं मानवीय क्षमताओं विकास'। व्यक्तित्व संवर्धन के लिए स्टीफेन्स कोवी, विनसेंट पील आदि आधुनिक लेखकों की पुस्तकों के आधार पर कुछ कार्यक्रम विकसित हुए हैं। इनका उपयोग अधिकतर वाणिज्य, उद्योग आदि क्षेत्रों की कंपनियों के अधिकारियों, प्रबंधकों के व्यक्तिगत संवर्धन के लिए किया जा रहा है। ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए भी किया जाना चाहिए। विद्यार्थियों की मानवीय संवेदनाओं को, उनकी मूल्य-चेतना को विकसित और संवर्धित करने

शेष भाग पृष्ठ 13 पर

विद्यालय और समाज में मूल्य-शिक्षा

डॉ० रश्मि चौधरी

शिक्षा समाज का एक अभिन्न अंग है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज में ही सम्भव है, उससे हट कर नहीं। इसलिए, ओटावे के अनुसार उसके उद्देश्य, विधियाँ, प्रकृति उस समाज की प्रवृत्ति पर निर्भर करती हैं, जिसमें वह प्रक्रिया चलती है। व्यक्ति सामाजिक समूह में रहते हुए ही शिक्षा ग्रहण करता है तथा समाज में कुशलतापूर्वक रहने के लिए उसी समाज के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा अवश्य ही समाज को प्रभावित करती है, परन्तु वह भी समाज के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। इसलिये मूल्यों की स्थापना के लिए विद्यालय एवं शिक्षक की भूमिका अवश्य ही अहम है परन्तु व्यक्ति विद्यालय से निकल कर जिस समाज में जाता है, उसका भी महत्व कम नहीं है। अतएव समाज के एक अंग (शिक्षा व्यवस्था) को ही दृष्टि में रखकर मूल्य प्रदान करने से काम नहीं चलेगा। समाज के अन्य अंगों जैसे- राजनीति, अर्थव्यवस्था, प्रशासन, संस्कृति आदि पर भी ध्यान देना होगा, यदि हम बच्चों में मूल्यों का भली प्रकार विकास करना चाहते हैं। यदि हम समाज के इन अंगों में सुधार नहीं ला पाते हैं तो मात्र शिक्षा मूल्यों का विकास करने में पर्याप्त, या सहायक नहीं हो सकेगी। कारण बालक जाने-अनजाने भी बहुत कुछ सीखता है।

किसी समाज के लिए मूल्य परमावश्यक हैं क्योंकि वे किसी भी कार्य को चुनने के लिए मानक का काम करते हैं। मूल्य ही निर्णय, वरीयता, पसंद-

नापसंद के आधार होते हैं। तिलकराज भारद्वाज (एजुकेशन ऑफ ह्यूमन वैल्यूज) के अनुसार मूल्यों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है- (1) सकारात्मक मूल्य (2) नकारात्मक मूल्य। किसी मूल्य का सकारात्मक या नकारात्मक समझा जाना उस समय की संस्कृति के आधार पर परिभाषित मान पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ - सांस्कृतिक व्यवस्था के अनुसार जहाँ अनुशासन, सदाचार, साहस इत्यादि महत्वपूर्ण समझे जाते हैं, वहीं उद्धत, अशिष्ट, धृष्ट व्यवहार, विनम्रता का अभाव, या तौर-तरीके का अभाव नकारात्मक मूल्य समझे जायेंगे। इसके विपरीत ऐसी सांस्कृतिक व्यवस्था में जहाँ हिंसा, अपराधी क्रियाएँ यहाँ तक कि कानूनी अभाव भी सहन किये जाते हों, वहाँ नकारात्मक समझे जाने वाले मूल्य जैसे कानून की अवमानना एवं बेईमानी को भी मान्यता प्राप्त हो जाती है।

इस प्रसंग में श्री एम० के० काव (फाउन्डेशन ऑफ ओरियेन्टेड एजुकेशन) की गहन चिन्ता का उल्लेख किया जा सकता है। उनका कहना है कि आज जहाँ वैयक्तिक लक्ष्य प्राप्त करना ही सफलता समझा जाता है, वहाँ मूल्यपरक शिक्षा निर्थक सिद्ध होगी, वह व्यक्ति को सफल बनाने में समर्थ नहीं होगी, कारण सफलता का आधुनिक मापदण्ड कुछ और ही है। आज कल यह महत्वपूर्ण नहीं कि छोटे-बड़ों का आदर करें, बल्कि यह अधिक महत्वपूर्ण है कि आवश्यकता पड़े तो बड़ों का अनादर कर आगे बढ़ने का साहस कर सकें। उन्हें चतुर, स्मार्ट,

दृढ़ एवं व्यावहारिक व्यक्ति बनना है, तकि वे आज के प्रतिस्पर्धात्मक समाज में कामयाबी हाँसिल कर सकें। ऐसे में धैर्य, विनम्रता, समर्पण, संवेदना, सहयोगिता, एवं अहिंसा आदि निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं।

बालक उपर्युक्त मूल्यों के बारे में जो कुछ सीखता है, विद्यालय के बाहर ठीक इसके विपरीत पाता है। वह लोगों को ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा करते हुए पाता है, जो ऐन केन प्रकारेण प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे हैं या फिर यह पाता है कि उसके गुरुजन उन्हीं मूल्यों को ताक पर रख कर कार्य कर रहे हैं, जिनकी शिक्षा उसने विद्यालय में अपने शिक्षकों एवं पुस्तकों से प्राप्त की है। यह विरोधाभास उसमें द्वन्द पैदा करता है। बालक असमंजस में पड़ जाता है कि जिन मूल्यों की शिक्षा उसे मिल रही है, उन्हें वह अपनाये या फिर समाज में व्याप्त मूल्यों को। वह आगे बढ़ने की होड़, कटूतर प्रतिस्पर्धा, भ्रष्टाचार, चाटुकारिता आदि को अपनाए या फिर उससे दूर रहे।

एम० के० काव साहब का कहना है कि यदि हम प्रगति को सिर्फ दिन दूना रात चौगुना की गति से बढ़ते हुए भौतिक लाभ की दृष्टि से देखें तो मूल्य-शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। उनका कहना बिल्कुल सत्य है कि हम पहले यह तय करें कि वर्तमान परिस्थितियों में व्यक्ति के लिए या समाज के लिए मूल्य-परक शिक्षा आवश्यक है भी या नहीं। यह भी सोलहों आने सही है कि स्कूल-कालेज में कुछ और मूल्यों की शिक्षा और बाहर समाज में, व्यवहार में, कुछ और ही मूल्यों का आचरण उचित नहीं है।

ऐसा कब तक चलता चलेगा ? परिवर्तन लाना होगा हर क्षेत्र में। सामंजस्य लाना होगा हर क्षेत्र के मूल्यों में। सत्ता में, प्रशासन में - ग्राम पंचायत से लेकर केन्द्र सरकार तक, राजनीतिक गलियारे में - क्षेत्रीय राजनीति से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक, आर्थिक क्षेत्र में- स्थानीय व्यापार और व्यवसाय से लेकर बड़े-बड़े व्यापार तक, परिवार से लेकर देश तक, हर स्थान पर उन्हीं मूल्यों को अपनाना होगा जो कि संपूर्ण मानव जाति के लिये कल्याणकारी हैं, जो अनंतकाल से मानव हृदय को प्रिय रहे हैं, जो क्षणिक तात्कालिक न होकर चिरस्थायी हैं, चिरन्तर हैं, नीतिपरक हैं, तथा अध्यात्म की ओर ले जाने वाले हैं।

कथनी और करनी में बहुत अंतर हो चुका। अब मूल्यपरक शिक्षा का दायित्व विद्यालयों, शिक्षकों पर थोप करके राजनेता, प्रशासक, व्यवसायी, अभिभावक अपना पल्ला झाड़ कर बच नहीं सकते। उन्हें भी अपने आचरण में सुधार लाना होगा। शिक्षकों को मूल्यों का विकास तो करना ही चाहिये और वे करेंगे भी, बल्कि प्रयास कर भी रहे हैं- विविध तरीकों से जैसे- योग, कहानी, वैज्ञानिक परीक्षण, शिक्षण मॉडल, सांस्कृतिक गतिविधियों, खेल-कूद, नाट्यकला, चित्रकला, संगीत एवं अन्य पाठ्यसहगामी (राष्ट्रीय सेवा योजना, एन० सी० सी०) क्रियाओं के माध्यम से। परन्तु मूल्यों के विकास के लिये समाज के अन्य वर्गों को वैसा ही वातावरण बनाना होगा, एक परिवेश देना होगा जिनमें ये मूल्य पल्लवित, कुसुमित होकर अपनी सुगंध बिखेर सकें तथा बच्चों का चरित्र निखर कर सामने आ सके। •

विश्वशान्ति एवं बन्धुत्व में बौद्ध धर्म और भारत की भूमिका

डॉ० सुषमा जोशी

विश्वशान्ति एवं विश्वबन्धुत्व का स्वरूप भारत के प्राचीन गौरव में प्रारम्भ से ही समाहित देखा जा सकता है। प्राचीन काल से ही हमारे देश में विश्वबन्धुत्व, विश्वमैत्री जैसे शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का उद्घोष इसी आदर्श को इंगित करता है। इसी प्रकार के अपनत्व एवं आत्मीयता का उदाहरण अथर्ववेद के भूमि सूक्त में स्पष्ट रूप से मलता है - 'माताभूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः' अर्थात् यह भूमि मेरी माँ है व मैं इसका पुत्र हूँ। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त वैदिक आर्यों के राष्ट्रप्रेम का समुज्ज्वल प्रतीक है, इसमें जो वर्णित है वह आर्यों का देश के प्रति प्रगाढ़ अनुराग एवं बन्धुत्व का परिचायक है। भारत की अखण्डता तथा देश प्रेम की भावना पुराणों में भी वर्णित है। विष्णुपुराण में कहा गया है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

विश्वशान्ति और विश्व बन्धुत्व की भावना के विकास की आवश्यकता इतनी कभी भी महसूस नहीं की गई, जितनी की वर्तमान परिस्थितियों में की जा रही है। विगत दो विश्व युद्धों ने विश्व के सभी राष्ट्रों के सामने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि इसी प्रकार का एक और युद्ध हुआ तो इसकी विभीषिका पृथ्वी के समस्त प्राणियों का संहार कर देगी, सृष्टि विनाश के कगार पर पहुँच जायेगी। इसीलिये आज इसे विश्ववाद के नाम से सम्बोधित करते हुए सभी

को इससे अवगत कराना आवश्यक समझा जा रहा है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने लेखों के माध्यम से विश्वपटल पर विश्वशान्ति और बन्धुत्व के महत्व को उजागर किया। अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' में उन्होंने स्पष्ट किया कि - "अलगाव का अर्थ पिछड़ना और विनाश है। विश्व बदल चुका है तथा पुराने अवरोध टूट रहे हैं, इससे जीवन अधिक अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है, हमें आने वाले विश्ववाद में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है"।

प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री डॉ० राधाकृष्णन ने भी कहा था कि - "विश्व एक साझेदारी है। यह एक मैत्रीपूर्ण ब्रह्माण्ड है। हमने प्रेम करने के लिये जन्म लिया है न कि घृणा करने के लिये, हम एक दूसरे की सहायता करने के लिये पैदा हुए हैं, न कि एक दूसरे को समाप्त करने के लिये"।

इस कल्याणकारी भावना से ओतप्रोत विश्ववाद को बढ़ावा देने में भारत के प्रत्येक धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है। प्रत्येक धर्म के अन्तर्गत मानव की मंगलकामनाओं एवं कल्याणकारी भावनाओं को प्राथमिकता दी गई है। भारत भूमि में भगवान बुद्ध के आविर्भाव ने विश्वबन्धुत्व एवं विश्वशान्ति के समुन्नयन में असीम योगदान दिया। तथागत के सारगर्भित उपदेश एवं कथित आदर्श आज के अशान्तिमय एवं विषमताओं से भरे राष्ट्र के लिये दिशा निर्देशक के रूप में साबित हो रहे हैं। बौद्ध धर्म का आधार वास्तव में मंगल भावना ही है। मंगल अथवा 'सर्वजन हिताय' इस मूल मंत्र को

प्रमुखता प्रदान करते हुए तथागत ने मनुष्य को दुःखों से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त किया एवं दुःख का मूल कारण 'अविद्या' बताया। ये ही व्यक्ति में अनेक मलिनताओं को जन्म देती हैं। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रस्तावित 'अष्टांगिक मार्ग' का विश्वशान्ति एवं बन्धुत्व के विकास में योगदान निश्चित रूप से देखा जा सकता है एवं स्वभाविक है कि यदि अन्तःमन शुद्ध होगा तो कार्य की दिशा भी सार्थक होगी। विषमता और अराजकता से भरे राष्ट्र में आज जिस विश्वशान्ति व बन्धुत्व की आवश्यकता है, उसे बढ़ावा देने में तथागत के उपदेश ग्रहणीय माने जाते हैं। इस दृष्टि से ही बौद्ध दर्शन को प्रत्यक्ष व्यवहारिक दर्शन कहा जाता है। बौद्ध धर्म के योगदान को हम उन्हीं की शिक्षाओं के अन्तर्गत देख सकते हैं।

मानवतावादी शिक्षा - संकुचित राष्ट्रवादिता के कारण आज जो मानव-मानव में गहरा भेद, घृणा, एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति विकसित हो गयी है, इसे दूर करने में तथागत के उपदेश पूर्णतः सार्थक दिखाई पड़ते हैं। मानवता के प्रति निष्ठा एवं प्रेम उत्पन्न करना ही बौद्ध धर्म का उद्घोष था। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों से स्पष्ट कर दिया था कि जाति सम्बन्धी विभाजन पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों, पेड़-पौधों में देखा जा सकता है, किन्तु मनुष्य की एक ही जाति है और वह है उसका मनुष्यत्व। मानव मात्र का कल्याण करना ही व्यक्ति का सबसे बड़ा धर्म है। भगवान बुद्ध व्यक्तिवादी नहीं थे, उनके उपदेश व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के लिये मंगलकारी थे। तथागत ने 'हिताय सर्व प्राणिनाम्' का उपदेश दिया था, उनका संदेश था 'अत्त दीपो भव' अर्थात् स्वयं अपना प्रदीप बनो, जिससे उस ज्ञान रूपी प्रकाश में अज्ञानता का प्रवेश न हो सके।

भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित ये मानववादी विचार विश्वशान्ति व बन्धुत्व को पूर्ण सहयोग देते प्रतीत होते हैं।

सामाजिक आचरण - बौद्ध धर्म मानव मात्र के कल्याण का पक्षधर है। विश्व एक इकाई है और सम्पूर्ण मानव जाति एक है, तथागत का यह उद्घोष विश्व को एक सूत्र में बांधने का संदेश देता है। सामाजिक सद्भावना के उत्थान हेतु बुद्ध ने जो भी उपदेश दिये वह मंगलकारी हैं। भगवान बुद्ध का मानना था कि धार्मिक जीवन तभी सार्थक एवं प्रभावशाली होगा जब मन पवित्र व सरल होगा। 'धम्मपद' में कहा गया कि मन सभी धर्मों का अग्रणी है एवं स्वच्छ मन से किया गया कार्य सदैव सर्वहितकारी होता है, और यह स्वतः स्पष्ट है कि जो सर्वहितकारी, सर्वमंगलकारी होगा वह निश्चित रूप से विश्वबन्धुत्व व विश्वशान्ति को बनाये रखने में पूरा सहयोग देगा। बौद्ध साहित्य में वर्णित है - "हमारा मन कभी विचलित नहीं होगा। हम कोई कटु वचन नहीं कहेंगे, हम द्वेष रहित रहेंगे, सारे संसार में प्रेम व सहानुभूति की किरणें फैलेंगी जो दूरगामी और महान होंगी, बुरी भावना एवं कटुता से दूर होंगी।"

नैतिक मूल्य - वर्तमान समय में मनुष्य की आत्मिक उन्नति के लिये धर्म सम्प्रदाय की नहीं वरन् मानव मात्र के कल्याण के भाव की आवश्यकता है। नैतिक उत्थान हेतु आवश्यक करणीय कर्मों की शिक्षा की आवश्यकता है। मनुष्य यदि अच्छा बनेगा आत्मिक उन्नति के लिये धर्म सम्प्रदाय की नहीं वरन् मानव मात्र के कल्याण के भाव की आवश्यकता है। नैतिक उत्थान हेतु आवश्यक करणीय कर्मों की शिक्षा की आवश्यकता है। मनुष्य यदि अच्छा बनेगा

तो मानव मात्र का स्वतः कल्याण हो जायेगा। अतः मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। कर्तव्य बोध, धैर्य, सहनशीलता, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, दानशीलता आदि गुणों का समावेश व्यक्ति को परमानन्द देने वाला होता है। गौतम बुद्ध ने आध्यात्मिक प्रश्नों पर मौन रहते हुए नैतिक मूल्यों की स्थापना पर अधिक जोर दिया। आध्यात्मशास्त्रीय प्रश्नों को उन्होंने अव्याकृत कह कर टाल दिया था, उनके विचार से ऐसी विवेचनाओं का कोई तात्कालिक व्यावहारिक मूल्य नहीं था। तात्कालिक आवश्यकता उनकी दृष्टि में मानव का नैतिक उत्थान था, वे नैतिकता के माध्यम से व्यक्ति तथा समाज में मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे। तथागत का उद्घोष था - 'अक्रोध से क्रोध को जीतो, साधुता से असाधु को जीतो, और मृषावादी को सत्य से जीतो'।

भगवान बुद्ध ने इन्द्रिय संयम पर भी बल दिया। इन्द्रियों पर संयम स्थापित रखने के लिये उन्होंने 'दशशीलों' का विधान बनाया था। इन्हीं दशशीलों एवं नियमोपनियमों द्वारा बौद्ध दर्शन व्यक्ति और समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करने में समर्थ हो सका। व्यक्ति - व्यक्ति का नैतिक उत्थान निःसंदेह अपने व्यापक स्वरूप में विश्वबन्धुत्व को बढ़ावा देते हुए विश्वशान्ति को कायम रहने में सहायक देखा जा सकता है।

सर्वधर्म समभाव - वैश्विक शान्ति की स्थापना की पृष्ठ भूमि में सर्वधर्म समभाव को भी तथागत के उपदेशों में स्थान दिया गया। तथागत ने प्राणियों को धर्म के प्रति आस्थावान होने को कहा, धर्म मार्गदर्शक है अतः धर्म का श्रवण करना चाहिए। धर्म अनेक शंकाओं के समाधान में भी सहायक होता है।

संयुक्तनिकाय में कहा गया है कि - महात्मा बुद्ध ने भिक्षुओं को बुलाकर आदेश दिया कि - हे भिक्षुओं ! बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ, लोक पर अनुकम्पा करने के लिये, सुख के लिये, हित के लिये विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ, आदि में कल्याण कर, मध्य में कल्याण कर, अन्त में कल्याण कर इस धर्म का उपदेश करो।

मैत्रीभाव - विश्वशान्ति की स्थापना हेतु भगवान बुद्ध ने मैत्री भाव को प्रमुखता दी। उनका मानना था कि मैत्री भाव द्वारा दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को भी विनीत कर सुखी व अपना बनाया जा सकता है। शत्रु भावना का त्याग ही मैत्री भाव को बढ़ावा देता है, धीरे - धीरे यह मैत्री भाव विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रसारित कर सकने में सहयोग दे सकता है। उनके जीवन काल के बहुत से मैत्री भाव के उदाहरण देखे जा सकते हैं। विश्वबन्धुत्व की स्थापना के क्षेत्र में 'सदधर्मपुण्डरीक' में वर्णित बोधिसत्व चर्चा को प्रमुख रूप से उद्धृत किया जा सकता है। इसमें सार स्वरूप यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के समीप व एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के समीप लाया जा सकता है। वास्तव में एक और एक में सभी की अनुभूति भी हमें तभी हो सकेगी जबकि हमारा हृदय विशाल होगा, हम सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई समझते हुए एक दूसरे राष्ट्र, समाज व व्यक्ति के प्रति प्रेम सहानुभूति व अपनत्व की भावना रखेंगे। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत जिन पंचशील, अष्टशील, दसशील की चर्चा की गयी है, उसके मूल में भी मानवीय सद्भावना का सार देखा जा सकता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज

जो गम्भीर विचारणीय प्रश्न है, वह है मानव का अमानवीय हो जाना। आज मूल्यों का क्षरण इतनी त्वरित गति से हो रहा है कि चिन्तक भी निरुत्तर होते जा रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में हमारी प्रथम आवश्यकता इस गम्भीर समस्या के मूल तक जाना है। मानव जाति की रक्षा व कल्याण तभी सम्भव हो सकता है जब विश्व में शान्ति हो एवं बन्धुत्व की भावना का जन जन में विकास हो। केवल बौद्धिक गुणों के विकास से ही शान्ति व बन्धुत्व की स्थापना नहीं की जा सकती, इसके लिये शान्ति, अहिंसा व बन्धुत्व के महत्व को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर बढ़ावा देना होगा। शिक्षा जगत से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को अपने दायित्व को पहचानते हुए मानवता को बचाने के लिये समर्पित भाव से आगे बढ़ना होगा। हमारे सम्मिलित प्रयास ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' को सही अर्थ में चरितार्थ कर सकेंगे। •

पृष्ठ संख्या 7 का शेष भाग

के नए अवसरों को, तथा नए प्रकारों को तलाशना होगा। यह तभी होगा जब विश्वविद्यालय के आचार्यगण पठन-पाठन, शोध के अतिरिक्त, चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास को भी अपना दायित्व समझेंगे।

विद्यार्थियों को मूल्यनिष्ठ, सच्चरित्र बनाने की प्रेरणा देना, उनकी मानवीय संवेदनाओं को विकसित करना, उनकी सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक चेतना को जगा कर उसे परिमार्जित करना और उन्हें एक अच्छे व्यक्ति बनने की राह दिखाना, ये सभी काम विश्वविद्यालय के शिक्षकों और शैक्षणिक अधिकारियों का है। लेकिन वे विद्यार्थियों को तभी

प्रभावित कर सकेंगे जब ये मूल्य और गुण उनके स्वयं के व्यक्तित्व के अंग हों, और उनके व्यवहार में, वाणी में, सोच में परिलक्षित होते हों। इसके अभाव में मूल्य-शिक्षा का कोई भी कार्यक्रम प्रभावी नहीं हो सकेगा। अतः विद्यार्थियों के साथ ही साथ शिक्षकों और शैक्षणिक अधिकारियों के लिए भी मूल्य-शिक्षा और व्यक्तित्व विकास के कार्यक्रम बनाने होंगे। दूसरे शब्दों में, शिक्षकों को भी शिक्षित करना होगा। कहना न होगा कि यह काम और भी अधिक कठिन है। किन्तु उतना ही अधिक आवश्यक भी है। यह कार्य कैसे होगा, कौन करेगा आदि जटिल प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करना होगा। यह विचार मंथन कई स्तरों पर होना चाहिए - विश्वविद्यालयों के स्तर पर, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के स्तर पर और शिक्षा मंत्रालय के स्तर पर। साथ ही इस मंथन से निकले कार्यक्रमों को, योजनाओं को दृढ़ता से लागू करने का संकल्प लेना होगा। तभी उच्च-शिक्षा व्यवस्था चरित्र निर्माण और समन्वित व्यक्तित्व विकास के अपने वांछित उद्देश्यों को पूरा करने में सफल हो पाएगी। •

“राष्ट्र के निवासियों का शरीर ही राष्ट्र है, आत्मा ही राष्ट्र है, मन ही राष्ट्र है, शरीर दुर्बल है, आत्मा दुर्बल है, मन दुर्बल है, तब राष्ट्र भी दुर्बल है।”

“प्रत्येक देश या जाति का अभ्युदय मूलतः उसकी प्रजा के आत्म-पौरुष पर निर्भर है।”

-पं० मदन मोहन मालवीय

मेरे विद्यालय-मेरा गांव

साभार

वे सभी मानवीय मूल्य जो हमारे जीवन में सर्वदा स्पृहणीय और अनुकरणीय हैं, उन्हें ग्रहण करने या सीखने के लिए हमें सदैव कहीं दूर जा कर प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि कई बार वे हमारे आस-पास के परिवेश में मलय सुगन्ध की तरह उपस्थित रहते हैं। आवश्यकता मात्र उनका अनुभव करने और तदानुकूल आचरण करने की है। एक वीतरागी सन्यासी के पास जब सरल हृदय ग्रामीण कुछ जानने की जिज्ञासा से जाता है तो किस प्रकार उस सन्यासी द्वारा- उस 'सरलमना' के अन्तरतम के ईश्वरीय स्वरूप को गौरवान्वित करवे हुए और अपने सभी ज्ञान को सहज ग्रामीण परिवेश की देन बताते हुए -अपने अद्भुत चिन्तन का सहज भाषा में उद्बोधन किया गया है, इसका परिचय हमें प्रख्यात सन्त ब्रह्मलीन अवधूत भगवान राम के इस लघु संस्मरण से मिलता है। उनके इस प्रेरणास्पद जीवन-संस्मरण को प्रकाशित करते हुए हर्षानुभव के साथ हम इस लेख के लिए सर्वेश्वरी समूह संस्थान का आभार प्रकट करते हैं- संपादक

कल रात कार्तिक पूर्णिमा का चाँद जब मुझे निहार रहा था, तब मैं अपनी जन्मभूमि गुण्डी ग्राम के 'बताऊ' गड़ेरिया और उसकी पत्नी 'लौकी' की यादरूपी अंजोरिया में विभोर था।

बताऊ दादा और लौकी आजी दोनों ही धन्य थे। दोनों ही हमारी जन्मभूमि में, मानो, दो बेशकीमती अंगूठी के दो अनमोल नग थे। बताऊ दादा केवल अपने ग्राम में ही नहीं, बल्कि आसपास के ग्रामों में भी आदर के पात्र थे। ये दोनों पति-पत्नी, साधु-संतों एवं महात्माओं की सेवा को अपना अहोभाग्य समझते थे। स्वजनों के आवभगत में प्रसन्न रहना उनका स्वभाव था। इस तरह से दोनों की जिन्दगी हमारी जन्मभूमि के आदर्शों की किताब थी। दोनों महान थे। जिस व्यक्ति को पूरा ग्राम चाहता है, वह

महान है ही। यही बताऊ दादा थे जिन्होंने एक दिन मुझसे पूछ दिया था इस तरह-

कहीं भगवान बाबा ! रऊआ कौन कमी रहे कि सब घर, परिवार, परिजन आउर प्रान्त छोड़ के चल गइलीं ? ऊ कवन अइसन चीज रहे जवना के सीखें रऊरा बाहर गइलीं, परदेश गइलीं ? गइल रहलीं त का सीख के अइलीं ? तनी हमरों के बताई। हमहूँ जान लीहीं कि ई बात सीखे जोग बा।

कल रात अजोरिया के अंजोर में वह सब याद पड़ गया कि उस दिन बताऊ दादा को मैंने क्या-क्या कहा था। मैंने कहा था-

“दादा ! मैं तो आप लोगों की ही सीख का धनी हूँ या मैं अपने ही घर-परिवार कर सीखों का अभ्यास करने के लिए अभ्यास-मार्ग पर निकल पड़ा था। दादा ! यह आप कभी न सोचें कि हमारा गांव-परिवार से बाहर भी किसी सीख की भीख मिलती है।”

पुनः मैंने अपने बताऊ दादा से कहा-

“दादा अब मैं अपनी जन्मभूमि के गांव, घर, परिवार अथवा आप लोगों की ही दी गई सीख को आपके सामने धर दे रहा हूँ।”

“अच्छा दादा ! तो सुनिये, मैंने किस किस से क्या क्या सीखा। मेरे पिता और पितामह तो मेरे सामने नहीं थे, क्योंकि मुझे होश आने तक वे स्वर्गवासी हो चुके थे। प्रपितामह, श्री हृदय प्रसाद सिंह, जीवित थे। मैंने अपने प्रपितामह से सीखी थी-मितव्ययिता, आदर्श आचरण। इस तरह से अच्छी

से अच्छी शिक्षा योग्य व्यक्तियों से घर पर भी मिल सकती है। उसके लिए पब्लिक स्कूल जाना अवश्यक नहीं है। उनसे मैंने यह भी सीखा था कि किसी से ईर्ष्या, घृणा, द्वेष नहीं करना चाहिए, और किसी का कोई सामान या कोई चीज बगैर माँगे नहीं लेना चाहिये। यह सब मैंने प्रपितामह से सीखा थी। अपने परिवार की लौंडी से मैंने सीखा-विभिन्न प्रकार की धर्म कथाएँ, माता-पिता एवं बन्धु-बान्धव तथा अपने आश्रित पशुओं की भी सेवा और यह भी कि हिंसा नहीं करनी चाहिये। वह कहती थी कि मेढक मारने से कान बहता है। किसी का नमक खाकर उसे धोखा नहीं देना चाहिये। जिसका नमक खायेँ उसका आदर करना चाहिये, सम्मान करना चाहिये, उसको प्यार करना चाहिये। यह मैंने उस लौंडी से सीखा।

मैंने अपनी माता से सीखा परोपकार करना चाहिये, सन्त-महात्माओं की सेवा करनी चाहिये, गुरु एवं आचार्य को कुछ दान देना चाहिये, उनका कभी कोई सामान नहीं लेना चाहिये। ब्राह्मण, साधु, गाय की भी सेवा करनी चाहिये। वृक्ष को नहीं काटना चाहिये। फल-फूल, साग-सब्जी का पौधा समय-काल से लगाना चाहिये। यह करने से पाप का नाश होता है। पुण्य का उदय होता है। भगवती-भगवान के लिए समर्पित भावना रखनी चाहिये। अपने नौकर-चाकर, कर्मचारियों को कभी 'रे', कहकर नहीं बुलाना चाहिये। आदर से बुलाना चाहिये। यह मैंने अपनी माता से सीखा।

हमारी जन्मभूमि पर एक मकुनी साहब रहते थे। उस बूढ़े मकुनी साहब से मैंने सीखा कि किसी के कारज-परोजन की कमी-बेसी में हाथ

बंटाना चाहिये। किसी की आवश्यकता के समय पर मेहमान या रिश्तेदार आ जाने पर यदि मदद की आवश्यकता हो तो मदद करनी चाहिये।

गांव के मेहमान को अपना मेहमान समझना चाहिये। वे चाहते थे कि कोई ग्राहक परिस्थितिवश भूखा न रहे। आज नहीं पैसा है उसके पास तो कल दे देगा। उसको सामान दे देना चाहिए। बाढ़ या विपत्ति आ जाने पर गाँवों में प्रायः यह समस्या खड़ी हो जाया करती थी। मैंने मकुनी साहब से यह सीखा था और यह भी सीखा था कि चाहे लोग बड़े जमींदार हों, मध्यम वर्ग के हों या छोटी स्थिति के हों उनकी दयनीय अवस्था का लाभ नहीं उठाना चाहिये। इसे वे अपने बच्चों को भी बताया करते थे। मैं उनसे बहुत प्रभावित रहता था-बचपन में।

जब मैं अपने ग्राम में मोदियाइन, मनु की पत्नी, चूल्हन की माँ के पास जाता था तो मोदियाइन बबुआ-बबुआ कहकर गोद में उठा लेती थी और अपनी गुडुवा मिठाई देकर इतना प्यार करती मानों मैं उन्हीं का बेटा था। उस गांव के सभी मुहल्लों के बच्चों की प्यारी, उदारचरिता, आदरणीया मोदियाइन की मुझे बहुत याद आती है। वह अनेक धार्मिक कथाओं द्वारा हम सब में भगवान के प्रति आदर पैदा करती थी। धन्य है चूल्हन की माँ, जिनकी मुझे अभी भी बहुत याद इसे वे अपने बच्चों को भी बताया करते थे। मैं उनसे बहुत प्रभावित रहता था-बचपन में।

जब मैं अपने ग्राम में मोदियाइन, मनु की पत्नी, चूल्हन की माँ के पास जाता था तो मोदियाइन बबुआ-बबुआ कहकर गोद में उठा लेती थी और अपनी गुडुवा मिठाई देकर इतना प्यार करती मानों

मैं उन्हीं का बेटा था। उस गांव के सभी मुहल्लों के बच्चों की प्यारी, उदारचरिता, आदरणीया मोदियाइन की मुझे बहुत याद आती है। वह अनेक धार्मिक कथाओं द्वारा हम सब में भगवान के प्रति आदर पैदा करती थी। धन्य है चूल्हन की माँ, जिनकी मुझे अभी भी बहुत याद आती है। यह मैंने आप ही से सीखा कि बाढ़-बूढ़े में कैसे या किस प्रकार लोगों की मदद करनी चाहिये। जिसका नुकसान होता था वे लोग उसके पास आते और वे बगैर कुछ परवाह किये दुकान में जो कुछ होता उससे वे अवश्य कुछ न कुछ मदद करतीं। मैंने मोदियाइन से हार्दिकता और सौहार्द सीखी थी।

अपने समकालीन मित्रों से मैंने सीखा-शालीनता, सुहृदयता, निर्भीकता और यह कि किसी की किसी चीज का नुकसान नहीं करना चाहिये, सभी बड़े-बूढ़ों, बुजुर्गों का आदर करना चाहिये, चाहे वे किसी भी जाति के हों। यह मैंने अपने बाल-मित्रों से सीखा।

मैंने अपने वैष्णव गुरु श्रीकान्त जी से सीखा ईश्वर-प्रेम। सभी प्राणियों में ईश्वर का प्रतिबिम्ब देखना और यह कि भगवान-भगवती का कृपा-पात्र बनने के लिए, देव-दर्शन करने के लिए, अपने बड़े-बूढ़ों का आदर करना चाहिये, देवालयों में जाना चाहिये, सद्-ग्रन्थों को सुनना चाहिये। मैंने वैष्णव गुरु श्रीकान्त जी से यह सीखा।

परमहंस जी से मैंने सीखा कि मेरे जीवन में सुधार और अनुशासन की आवश्यकता है। यह भी सीखा कि सिर्फ किसी की कोरी नकल नहीं करनी चाहिये। बहुत बड़ी-बड़ी दर्शन की बातों पर नहीं बोलना चाहिये। बहुत बड़े-बड़े वक्तव्य नहीं

देने चाहिये। अपना आत्म प्रदर्शन ऐसा नहीं करना चाहिये कि मैं बहुत अनुशासन-बद्ध या दयालु व्यक्ति हूँ। आत्म प्रदर्शन कभी नहीं करना चाहिये। तार्किकता से बचना चाहिये और ईश्वर में अनुरक्त रहना चाहिये। ध्यान-धारणा द्वारा सभी का आदर करना चाहिये।

मैंने अपने पशु चराने वाले चरवाहे से यह सीखा कि पशु मानव से भी ज्यादा उपयोगी है। पशु में जितना गुण है, उतनी सदाचारिता आज मनुष्य में भी नहीं है। गाय दूध देती है, गोबर देती है, अपने पुत्रों को सौंप देती है - अपनी सेवा करने वाले के हाथ में, जिससे कि वह हल, गाड़ी आदि किसी में उसको जोत सके। उसके एवज में वह गऊ हमसे उदर भर खाना छोड़कर और कोई पारितोषिक अथवा पारिश्रमिक नहीं चाहती। इसी तरह से सज्जन मनुष्य का भी गुण होता है। सो मुझे इन्हीं गुणों की आवश्यकता समझ में आ रही है। और मैंने अपने उस चरवाहे से यह भी सीखा कि सच, सन्तोष, धैर्य और नम्रता कितनी आवश्यक है। अपने कर्तव्य के प्रति उत्साहित होना चाहिये, यह भी मैंने अपने उस चरवाहे से सीखा।

आजी से मैंने सीखा- “मनुष्यों से अधिक से अधिक प्रेम और सौहार्द बनाये रखना चाहिये, जितना ज्यादा से ज्यादा हो, मित्र बनाना चाहिये। कभी भूलकर भी दुश्मन नहीं बनाना चाहिये। जितने अधिक मित्र होंगे और जितने दूर-दराज तक होंगे वहां तक तुम्हारी व्यापकता होगी। मित्र के दुःख और वेदना में सदैव अपनापन छोड़कर, सहयोग, मदद करनी चाहिये। सुख में तो कहना ही नहीं है। मैत्री बहुत ही महान धन और गुण है, इसे किसी

तुला पर नहीं तौला जा सकता है और नम्र रहना चाहिये, छोटे-बड़े सभी का आदर करना चाहिये। विशेषकर छोटों का बहुत आदर करना चाहिये। जब तुम सबके अनुकूल हो जाओगे तब तुममें लोग ईश्वरीय गुणों का भरमार देखेंगे, जो किसी भी तुला पर नहीं तौला जा सकता। मित्र बनाओ, मित्र खूब बनाओ और दुश्मनी भूलकर भी नहीं। सभी जातियों में मित्र बनाओ, सभी मजहब के लोगों को मित्र बनाओ। इससे सुख से सोओगे, सुख से जाओगे और सुख से पृथ्वी पर घूमोगे। जब हिंसा नहीं करोगे तो पशु भी तुमसे मैत्री करेंगे। ईश्वर की आस्था एवं विश्वास करना। ईश्वर को एकान्त में ढूँढ़ना। भीड़ से ज्यादा अच्छा होगा एकान्त में उससे मिलना। वह एकान्त में मिलता ही है। भीड़ में तो औरों से मिलता होगा तो तुमसे मिलने में संकोच करेगा।” क्या एकान्त ही ईश्वर है, आजी? “एकान्त ईश्वर नहीं बल्कि एकान्त में ईश्वर है। एकान्त में एकाग्रता तो मिलेगी ही, शान्ति भी मिलेगी। हाँ बाबू ! एकान्त में एकाग्रता तो मिलेगी ही, जो मनुष्य जीवन में अत्यंत सुखदायी भी होती है। इतना जीवन में अवश्य करना कि दूसरों की वस्तु कभी न छूना, उसकी इच्छा भी न करना, जब वह दे तभी लेना। और अगर वह उसकी जरूरत की चीज हो तो उस वस्तु को कभी मांगने का प्रयत्न न करना। जो मैंने कहा है यदि वह तुममें आयेगा, बाबू ! तो तुम संतुष्ट रहोगे, शान्त रहोगे, तृप्त रहोगे और बहुत आनन्द उठाओगे।” ये सब बातें मैंने अपने बुढ़िया आजी से सीखीं।

मैंने अपने शिव भक्त नाना से सीखा कि “राष्ट्र बदलेगा, समाज बदलेगा, राजा बदलेगा और

शासक बदलेगा। सबमें परिवर्तनशीलता है, सबमें घट-बढ़ होती रहती है, पर ईश्वर में घट-बढ़ नहीं होती है।

बाबू ! महापुरुषों की व्यापकता में भी घट-बढ़ नहीं होती, सन्त और शिव भक्तों में भी घट-बढ़ नहीं होती। वे सदैव सम, संतुष्ट एवं एकरस बने रहते हैं। समाज में समाज की प्रथाओं में घट-बढ़ होती रहती है। ये सब परिवर्तनशील हैं। राष्ट्र में भी घट-बढ़ होती रहती है-कभी छोटा बनता है, कभी बड़ा बनता है। कभी सिकुड़ जाता है कभी फैल जाता है। ऐसा क्यों नाना ?” राष्ट्र शासक की संकीर्णता से संकुचित होता है और उसकी उदारता से विकसित होता है। यह शासक की मनोदशा पर निर्भर करता है बाबू ! शासक भी परिवर्तनशील है, बाबू ! संत, महात्मा, महापुरुष का स्थान राजा और धनवान कभी नहीं पाता है, बाबू ! पृथ्वी पर संत, महापुरुष, महात्मा का जो स्थान है, वह स्थान कभी कोई कितना बड़ा विद्वान हो, साहित्यकार हो, लेखक हो, राजा हो, शासक हो या सेठ-साहूकार हो, यहाँ तक कि यदि उसमें हिमालय को उठाने की और समुद्र को सोखने की क्षमता हो, पर जैसे वह अपनी जननेन्द्रियों पर काबू नहीं पा लेता तो उसी प्रकार संत, महापुरुष और महात्मा का जो स्थान है इस पृथ्वी पर, वह उसे नहीं मिलता। इसलिए संत, महापुरुष और महात्मा को जहाँ भी देखना प्रणाम करना, विनय करना और उनसे सद्गुण सीखना, इसे अपना परम कर्तव्य समझना।

दंभी, लंपट, वाचाल, बातुनी और लच्छेदार भाषण देने वाले अपनी इंद्रियों के सामने झुक जाते हैं। इसलिए इनमें श्रद्धा हो या न हो, इनसे घबराना

नहीं। संत महात्मा इन्हें न कभी देखना चाहते हैं और न तो कोशिश ही करते हैं कि वे कभी इनकी तरफ देखें। जनश्रुतियों में सदैव संत-महात्मा बने हुए हैं, बने रहेंगे। राजा-महाराजा और धनवान तो जन-श्रुतियों से भी विलुप्त हो जाते हैं।

तीन गुण तीन सिद्धि तृण सम त्यागी।

सो जानो वह परम विरागी।।

इन महापुरुषों की सेवा से तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा। राजा, शासक और धनवान व्यापारियों की सेवा से तुम्हें शासक की मोहर लगी मुद्रा छोड़कर न प्यार मिलेगा, न शान्ति मिलेगी और न सुख ही मिलेगा। हाँ, उदर भर सकते हो जिसे कि आकाश में निर्भय और निर्द्वन्द्व विचरती हुई पक्षियाँ बिना सेठ-साहुकारों की चाकरी किये ही पाने में सक्षम हैं। जंगली पशुओं को कौन देता है ? पक्षियों को कौन देता है ? ईश्वर जो स्वयं आहार बनकर सभी प्राणियों को भोजन देते हैं, हमें उस ईश्वर का कृतज्ञ होना चाहिये, ईश्वर-स्मरण करना चाहिये। संत-महापुरुषों का संग और सत्संग करना चाहिये। ईश्वर की ही आत्मा संत-महापुरुषों और महात्माओं में होती है। यह मैंने अपने शिव भक्त नाना से सीखा। यह मैंने अपनी बुआ से सीखा कि अपने रिश्तेदारों, दायाद, गोतिया और सगे-सम्बन्धियों से अच्छा व्यवहार रखना चाहिये। कम से कम चार पुस्त तक, अगर हो सके तो सात पुस्तों तक सम्बन्ध बना के रखना चाहिये। कभी कोई रिश्तेदार गरीब हो जाते हैं तो उन्हें छोड़ नहीं देना चाहिये। उनके दरवाजे पर अवश्य जाते रहना चाहिये। न मालूम उनसे कब काम पड़ जाय। अपने पुराने सेवक और सुश्रुषा करने वालों से भी सम्बन्ध बनाये रखना

चाहिये, इन्हें नहीं छोड़ना चाहिये। जब बहुतेरे रिश्तेदार गरीब हो जाते हैं, तो लज्जावश नहीं आते अपनी तरफ से अवश्य पत्राचार करना चाहिये और उनके सुख-दुःख को पूछना चाहिये। यदि आपसे कुछ हो सके तो उनकी मदद अवश्य करना चाहिये और जो धनी हैं, सम्पन्न हैं, उनके सुख में हम भले न जायें पर उनसे सम्बन्ध बनाये रखना चाहिये और उनके दुःख में अवश्य उनके पास जाना चाहिये, रिश्तेदारों को अपने नहीं भूलना चाहिये। किसी कारणवश यदि अपनी वह रिश्तेदारी खत्म हो गयी हो तो फिर से सम्बन्ध बनाना चाहिये और उस कारण को महत्व नहीं देना चाहिये जिसके कारण सम्बन्ध टूटा हो। थोड़े से स्वार्थ के वशीभूत होने के कारण यह सब हो जाता है मगर हमेशा व्यक्ति स्वार्थी नहीं रहता। जब व्यक्ति थोड़ा सा 'स्व-अर्थ' यानि आत्मा में अर्थ रखने लगता है तो यह सब अपने आप ठीक हो जाता है। अपने रिश्तेदारों, सगे-सम्बन्धियों, मेहमानों और बन्धु-बान्धव और सेवा-सुश्रुषा करने वाले जनों में आदर की भावना रखनी चाहिये। यह मैंने अपनी बुआ से सीखा।

मैंने अपने कुटुम्बियों से सीखा- क्या सीखा ? 'स्त्री जाति को सम्मान देना चाहिये, आदर देना चाहिये, उनसे मातृत्व भावना रखनी चाहिये। कुमारियों में बहन की भावना रखनी चाहिये और बड़ी और वृद्धाओं में अपनी आजी की जैसी भावना रखनी चाहिये। अपनी पत्नी को छोड़ सभी स्त्रियों के प्रति पूजनीय मातृत्व भावना रखनी चाहिये। वैसे तो अपनी पत्नी भी आदर और सम्मान की पात्र होती है। अतः पत्नी के प्रति भी पूज्य भावना रखनी चाहिये। कुलीन स्त्रियों को भी यही भावना पर

पुरुषों के प्रति रखनी चाहिये। यदि कुमारी है और मन से भी पुरुष के प्रति कोई भावना होती है तो उस अपराध के लिए गुरुजनों, महापुरुषों का ध्यान करना चाहिये, जिससे यह अपराध क्षम्य हो और वे स्वच्छ, निर्मल कुमारी धर्म को बनाये रखने में सक्षम हों। विवाहिता स्त्रियों को भी यही चाहिये अपने पतिदेव के सिवा सभी पुरुष मात्र के प्रति पुत्र-भावना रखें। दूसरे पुरुषों के प्रति यदि कभी उनका अनुराग मन, वचन और कर्म से होता है तो उस अपराध से मुक्ति पाने के लिए उन्हें गुरुजनों और महापुरुषों का स्मरण करना चाहिये। साथ ही साथ ग्लानि भी करें। इससे अपराध क्षमा हो जाता है। जो भगवान क्षमा नहीं करते उसे गुरुजन और महापुरुष क्षमा कर देते हैं। ऐसा ही पुरुषों को भी चाहिये। कुमार अवस्था में यदि किसी नारी के प्रति अनुराग हो जाता है तो गुरुजनों और महापुरुषों का स्मरण करें, उनके चरणों में जाकर प्रणाम करें तब मन से दुष्टता के अपराध से वे मुक्त हो जाते हैं। यदि वे विवाहित पुरुष है तो उन्हें अपनी धर्मपत्नी के सिवा सभी स्त्रियों के प्रति माता, बहिन, बुआ इत्यादि, जो जिस अवस्था में हैं, उन्हें वैसी दृष्टि से देखना चाहिये। मन, वचन और कर्म से वैसे ही सम्बोधित करना चाहिये। जो पुरुष स्त्री मात्र को माता की निगाह से, बहिन की निगाह से, बुआ की निगाह से और आजी की निगाह से देखता है, उस पुरुष के अपराध तत्क्षण समाप्त हो जाते हैं। यदि वह अपने गुरुजनों और महापुरुषों के चरणों में मन से भी अपने अपराधों के प्रति क्षमा मांगता है तब भी उसके अपराध क्षम्य होते हैं। नहीं तो दिन पर दिन इस प्रकार के दुष्कर्म होते रहते हैं और वह पुरुष

अपनी आत्मा को पददलित कर देता है, अपनी स्वर्णमयी काया को दूषित कर देता है और उसे जीवन भर नारकीय यातना के समान यातना सहनी पड़ती है। उसे समाज में, सज्जनों के संग में, बड़ा ही अपमानित होना पड़ता है, समाज की तरफ से बहिष्कृत होना पड़ता है, और विशेष क्या कहूँ, वह अपने आप इतना क्रोध और दुःख प्रदर्शित करता रहता है कि रह रह कर उसकी आत्मा तड़फड़ा जाती है। मनुष्य जाति को चाहिये कि स्त्री जाति को अधिक से अधिक सम्मान दे, इतना कि जितना वे अपने भाई-बन्धु को भी नहीं देते हो। इसलिए नहीं कि वह घर की गृहणी है, इसलिए नहीं कि वह बहन, माता, पत्नी इत्यादि है, इसलिए कि वह पीयूष की धारा है, वह अमृत है, पुरुष मात्र को संवारने, सुयोग्य बनाने और तनाव में पड़े हुए को बहुत बड़ा सहारा होती है। वह पृथ्वी स्वरूप है, वसुधा है और क्षमा करने वाली है। वह बहुत मीठा और स्वादिष्ट क्षीर देने वाली होती हैं, बल प्रदान करने वाली होती हैं। यही सब गुण मैंने अपने कुटुम्बियों से सीखा।

यह मैंने अपने गांव के बड़े-बूढ़ों और पुरनियों से सीखा, महाजनों से सीखा कि “पांव से बहुत चलते रहने पर थकावट होने लगती है, पर जितना कि बैठे-बैठे मन से चलने पर आदमी थक जाता है, उतना वह शारीरिक श्रम से नहीं थकता है। मानसिक श्रम बड़ा ही दुष्कार्य है-शारीरिक श्रम की तुलना में। मन ही शरीर को चलाता है और शरीर के चलने को महसूस भी कराता है। यदि मन खुद ही चलने लगे, तो अपार शक्ति क्षीण होती है। शारीरिक श्रम की तुलना में थकान अधिक महसूस होती है। शरीर से आप जब तक मील भर चलते

हैं तब तक मन से लाखों मील का चक्कर लगा आते हैं। तो आप सोच सकते हैं कि कितना श्रम करना पड़ता है। यही कारण है कि मानसिक स्थिति ठीक न रहने पर जीवन में अस्त-व्यस्तता व्याप्त हो जाती है। इसी मानसिक स्थिति को निग्रहित करने को सभी महाजनों ने बताया है। एक चिन्तित मनुष्य इसी का शिकार रहता है और मैंने अपने गांव के बूढ़े-बड़े से सीखा कि यह बौखलाया हुआ मनुष्य कौन है ? जीवन में असफल है, बाबा ! यह नौजवान। यही नहीं, कितने ऐसे नौजवान बौखलाये हुए चिन्तित हैं, मानसिकता उन्हें धर दबोची है, अपकृति के पात्र हैं, सुकृति उन्हें सुहाती नहीं। ये वही मनुष्य हैं जो बौखलाये हुए से रहते हैं, दूसरे के काम बिगाड़ने पर लगे रहते हैं, बुरा-भला की उन्हें पहचान नहीं होगी। ऐसे मनुष्य असफल हैं, जीवन में उन्हें असफल मनुष्य कहते हैं और जीवन में उन्हें सफलता नहीं मिली। ये निराश मनुष्य प्राणी हैं। ये जीवन में कभी सफल नहीं हो सकते। यह मैंने गांव के बूढ़े-बड़े, पुरानियों से सीखा। क्योंकि गुरुजन और सज्जन का संग इन्होंने नहीं किया है और न तो करना चाहते हैं। इसलिए ये असफल हैं और बौखलाये हुए हैं।

मैंने अपने ग्राम के एक गोड़ से सीखा कि 'किया हुआ आचरण-व्यवहार, निकला हुआ वचन और तीर फिर नहीं लौट कर आते।'

मैंने अपने ग्राम के एक पासी से सीखा कि जीवन में सफल मनुष्य का हम सब लोग स्वागत करते हैं। कोई व्यक्ति कितना भी छोटा क्यों न हो, यदि उसने जीवन में सफलता प्राप्त की है तो हम उसका स्वागत करते हैं। असफल मनुष्य का अपना

आचरण भी उसका स्वागत नहीं करता, चाहे वह कितना भी बड़ा राजा, सैनिक, सेठ, नेता या अन्य प्राणी हो। उससे एक से एक गलत एवं अनुचित कार्य होने लगते हैं। यह मैंने अपने ग्राम के एक पासी से सीखा जो ताड़-खजूर की गाछ पर चढ़ कर उत्तुंग ऊँचाई से सुगमता से उतर आते हैं।

मैंने अपने ग्राम के सूकू नामक धोबी से सीखा था कि अतिप्रिय मैल, कीचड़ एवं गन्दगी से सने वस्त्रों और उनके अंबार को तिरस्कार की दृष्टि से न देखकर, उनका सम्मान करें और उनकी सफाई करें। उन्हें स्वच्छ एवं स्वास्थ्यकर बनाकर दूसरों के मैल ढाँकने, तन ढाँकने, लज्जा ढाँकने तथा मलिन वस्त्र धारण करने से उनके मन में उत्पन्न हीनभावना को दूर करने का प्रयास करना चाहिये। हमारा ग्रामीण सूकू धोबी प्राणियों का मैल धोने और उन्हें हीनभावना के ऊपर उठाने में निपुण था। मैंने उस धोबी बन्धु से यह गुण पाया और उससे यह सीखा।

मैंने अपने ग्राम के दौलत नाम के हरिजन बन्धु से यह सीखा कि मस्तक का भी वह स्थान नहीं है जो चरण को प्राप्त है। संवागों की सुरक्षा हेतु हम चरण को चरण-दासी (जूता, चप्पल इत्यादि) की सेवाएँ प्रदान करते हैं, ताकि विवके से असमंजस की स्थिति टाली जा सके एवं मन, शरीर तथा चित्त स्वास्थ्य लाभ कर सकें।

मैंने अपने गांव के लगन नामक कुम्हार से यह सीखा कि निपुण एवं कर्मशील मनुष्य के हाथ के स्पर्श से मिट्टी सोना के समान मूल्यवान हो जाती है। उस शिल्पी के कुशल हाथों से उसके शिल्प की अनेक कृतियाँ भोजन पकाने के बर्तन से लेकर, सिर

ढँकने के खपरैल, जो मकानों पर छज्जा के रूप में लगाये जाते हैं, पूजा के घट-कलश इत्यादि तक गढ़ी जाती हैं। मिट्टी का रूपान्तरण कर अनेक धातुओं के समान बहुमूल्य वस्तुओं के सृजन में प्रवीण एवं शील तथा शालीनता को व्यावाहारिक रूप देने वाले उस कुम्हार से मैंने यह सीखा कि अपवित्र मिट्टी को छूकर और चक्र को घुमाकर पवित्र से पवित्र वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है। थोड़े ही काल में 84 लाख योनियों से भी अधिक चक्र घुमाकर वह उस अपवित्र मिट्टी को भी पवित्र करता है। उसी प्रकार भगवान भी अपने भक्त को करोड़ों योनियों से तत्काल घुमाकर और फिर निकाल कर अपने में मिला लेते हैं। यह मैंने अपने ग्राम के उस कुम्हार से सीखा।

मैंने शाक-सब्जी बोने वाले और उसके फलने-फूलने की प्रक्रिया में निरन्तर सुधार प्रदान करने वाले अपने ग्राम के भानु नामक एक कोयर (किसान) से सीखा कि साक-शब्जी के अभाव में खाद्य-पदार्थों में रोचकता नहीं होती। इस रोचकता की पूर्ति करने वाले पौष्टिक आहार का उत्पादक वह किसान इन वनस्पतियों को ग्राम और समाज में वितरित करता है और दूसरों को भी पौष्टिकता प्रदान कर उनकी परवरिश करता है और उससे प्राप्त अर्थ से अपने परिवार की परवरिश करता है। यह मैंने अपने ग्रामीण बन्धु भानु नाम के कोयर (किसान) से सीखा।

मैंने अपने ग्राम के हिरामन नामक लोहार से यह सीखा था कि केवल लोहा से निर्मित टाँगी या कुल्हाड़ी अकेला काष्ठ या लकड़ी को नहीं काट सकती है। टाँगी, आरी या कुदाल के रूप में लोहा,

लकड़ी-काष्ठ की मदद के बगैर लकड़ी-काष्ठ को काटने में समर्थ नहीं हो सकता। लोहा अपने आप कुछ नहीं कर सकता। मैंने उस हिरामन नाम के लोहार से यह सीखा। स्वजाति के लोगों और अपनी औलाद के कारण ही मनुष्य को हर जगह असफलता और अपमान के संयोग और वियोग का भुक्तभोगी होना पड़ता है। काष्ठ या लकड़ी को काटने या चीड़ने के लिए काष्ठ का डंडा जब तक नहीं लगेगा, तब तक टाँगी उसे नहीं काट या चीड़ सकती है। अपने ही बन्धु-बान्धव के कारण मनुष्य को असफलता का मुख देखना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप परशुराम के राम होने में या तो उनकी माँ के कारण व्यवधान हुआ या उनका निजी असराहनीय व्यवहार बाधक सिद्ध हुआ।

मैंने अपने ग्राम के पैरो नामक बड़ई से सीखा कि कैसे काष्ठ के आकार-प्रकार को देखकर और चित्त मन और मस्तिष्क में वांछित कलाकृतियों की रूप-रेखा की धारणा बनाकर उनको मूर्तरूप दिया जा सकता है। वह सर्व प्रथम अपने मस्तिष्क, मन और चित्त में उन कला-पात्रों की आकृतियाँ उभार लेता था या उसके मन-मस्तिष्क में स्वतः इनकी रूप-रेखा और आकार-प्रकार उभड़ आते थे। तदुपरान्त वह काष्ठ से इन कलात्मक मानचित्रों के अनुरूप चौकी, कुर्सी, मेज, दरवाजे, खिड़की इत्यादि का सृजन करता था। और भी जैसी आकृतियों का उदय उसके मन में होता था वह उन्हें उस काष्ठ में गढ़ लेता था और अपने बाहु-बल और मस्तिष्क से सटीक वैसी ही कलाकृतियों का निर्माण कर लेता था। मैंने उससे यह सीखा कि चित्त में जिसका उदय होता है, मन द्वारा जो गढ़ा

गया है या गढ़ा जा सकता है, उसे अपने बाहरी अनुभव से रूपान्तरित कर देखा जा सकता है और तुरन्त ठोस रूप दिया जा सकता है। यह मैंने पैरो नामक उस बड़ई से सीखा।

मैंने अपने ग्राम के उस दर्जी से यह सीखा कि किस प्रकार मन के भीतर उदय हुई वस्त्रों एवं परिधान की आकृति के अनुरूप कोरे कपड़े से हू-ब-हू वैसे ही वस्त्र इत्यादि तैयार किये जा सकते हैं। वह सादा कपड़े को काट-कुतर कर मन में कल्पित रेखा-चित्र के अनुसार, शरीर में सौंदर्य और शोभा बढ़ाने वाला शरीर के मापदण्ड के अनुसार कुर्ता, कमीज, टोपी इत्यादि विभिन्न प्रकार के चित्ताकर्षक वस्त्र और परिधान तैयार करता था।

उस दर्जी के कार्य-विधि से हमें अपने जीवन में सीख लेनी चाहिये। जिस प्रकार वह दर्जी कोरे वस्त्र के अनावश्यक हिस्सों को काट-कुतर कर सुन्दर परिधान का सृजन करता है, ठीक उसी प्रकार हम लोगों को भी चाहिये कि इन्द्रियों की विषय-वासनाओं को निर्मूल करें, तिरोहित करें और समाज के लिए या अपने के लिए जो अभद्र हो, उसे कांट-छांटकर सौन्दर्य का रूप दें एवं किसी तरह किसी भी प्रकार की अभद्रता का अकारण कारण न बनें। उस दर्जी के सिले हुए वस्त्र-परिधान की तरह, हमारा परिवर्तित चरित्र हमें सभा-सोसायटी, समाज या सज्जनों के बीच जाने के निमित्त उत्साहित करे, ऊँचा उठाये रहे और हमारे जीर्ण-शीर्ण शरीर को सुपुष्ट, बलवान और समर्थ बनाये रखे।

मैंने स्वयं आप से (बताऊ दादा गड़ेरिया) यह सीखा कि अपनी जीविका के साधन से मनुष्य समाज के लिए कितना उपयोगी हो सकता है

और कैसे निष्ठा-पूर्वक उसकी सेवा कर सकता है। “गड़ेरिया की भेड़े अपने मल-मूत्र से खेतों को ऊर्जा देती हैं, उनकी उर्वराशक्ति में वृद्धि करती हैं। उनके केशों से कम्बल आदि गर्म ऊनी परिधान, ओढ़ना इत्यादि तैयार किये जाते हैं जो मनुष्यों के शीतहरण की क्षमता रखते हैं। वे दूध देती हैं, आहार देती हैं। इस प्रकार मानव को विभिन्न प्रकार से अतिशय सुखी जीवन के साधन और उपकरण उपलब्ध कराती हैं। जिन घासों और खरों को अन्य पशु छूते भी नहीं उनको चर-खाकर ये भेड़ें अपनी उदारता की नैसर्गिक प्रवृत्ति का परिचय देती हैं।” ऐसे उपकारी पशु की सेवा-सुश्रुषा करने वाला, उनके संग रहने वाला बताऊ दादा गड़ेरिया स्वयं कितना उपकारी है- इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मैंने गौर किया कि अपने दैनन्दिन के कार्यों से समय निकाल कर सपत्नीक संतों का संग करना, ईश्वर की आत्मा को ढूँढ़ना-जो महापुरुषों, सन्तों और सज्जनों में पायी जाती है-उनका नित्य का नियम था। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति सतत जागरूकता और दूसरों को इसकी प्रेरणा देना, बताऊ दादा और लौकी आजी के दैनिक जीवन का अभिन्न अंग था। इस प्रकार के कर्तव्य परायण और सर्वगुण सम्पन्न संत बताऊ दादा गड़ेरिया से मैंने यह सब बातें सीखीं। मैंने उनसे यह सीखा कि उनके आदर्श गुणों और कर्तव्य परायणता को कैसे अपने आचरण व्यवहार में ढाला जा सकता है।

वे भेड़ों की सेवा करते थे। ऐसे ही सन्त-पुरुष मनुष्य-प्राणियों की सेवा करते हैं। •

विद्यार्थियों में धार्मिक पूर्वाग्रह : एक संक्षिप्त प्रयोग

डॉ० अमित कुमार सिंह

आज हमारी आँखों पर जिस पागलपन का परदा छाया हुआ है और जिसके कारण हम इतनी स्पष्ट और असंदिग्ध बातें भी नहीं देख पाते, उसका एकमात्र कारण यही शिक्षा है और इसी शिक्षा के कारण हमारी बुद्धि भ्रमित हो गयी है।

-लियो टॉल्स्टाय, हम करें क्या, पृष्ठ संख्या - 303

अजीतमल औरैया का एक छोटा कस्बा है। इसी कस्बे में जनता (पी० जी०) कॉलेज एक बहुत पुरानी शिक्षण संस्था है। डॉ० लक्ष्मण सिंह चौहान और डॉ० एस० एच० खान इसी कॉलेज में कार्यरत थे और अब सेवानिवृत्त हो चुके हैं। दोनों ने आपसी सहयोग से साथ-साथ एक जैसे दो मकान बनवाए और पिछले तीन वर्षों से बड़े प्रेमपूर्वक साथ-साथ रह रहे हैं। दोनों के आँगन के बीच एक दरवाजा है, जिससे लोग एक दूसरे के घर जा सकें। यह दरवाजा दिन भर खुला रहता है। रात को सुरक्षा की दृष्टि से इसे बन्द कर दिया जाता है। इनकी तीसरी पीढ़ी के मध्य वही प्रेम और भाईचारा दिखाई देता है, जो डॉ० खान और डॉ० चौहान की पीढ़ी की विशेषता थी। यह भारत की गंगा - जमुनी संस्कृति की जिंदा मिसाल है और जो राजनीतिक कारणों से समाज के स्तर पर नहीं देखा जा रहा है। बहरहाल दोनों की मित्रता के पीछे जो मूलभूत कारण देखा गया, वह न केवल समाज की दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि यही विद्यार्थियों के साथ मेरे प्रयोग का आधारभूत वैचारिकी और दर्शन बना। दोनों लोग साथ-साथ क्यों प्रसन्नतापूर्वक रह रहे हैं, इसके पीछे निम्नलिखित

कारण देखे गये।

- दोनों के मध्य विश्वास और मैत्री की भावना है, अविश्वास और पूर्वाग्रह नहीं।
- दोनों ने अनुभव किया कि शान्ति, सौहार्द और सहयोग के लिए सह-अस्तित्व अनिवार्य है।
- दोनों ने एक दूसरे के त्योहार और रीति-रिवाज में साथ - साथ खुशियाँ बाँटी।
- दोनों लोगों ने राजनीतिक संकीर्णता और मीडिया के एकपक्षीय पूर्वाग्रह विश्लेषण से स्वयं को मुक्त रखा और व्यक्तिगत अनुभवों को ही अपने सम्बन्धों का आधार बनाया।
- दोनों ही लोगों ने अपने अनुभव और आनन्द को न केवल अगली पीढ़ी तक पहुँचाया बल्कि उन्हें भी अपना साझेदार बनाया।
- दोनों ही लोग न केवल पास-पास रहते हैं बल्कि साथ-साथ भी रहते हैं अर्थात् उन्होंने आपस में सुख-दुख साथ-साथ भोगा। उन्होंने अपनी समस्याओं को स्वयं ही हल किया।

इस लेख का लेखक स्वयं इस उदाहरण की एक कड़ी है। इस लिए लेखक ने भाई-चारे के इस अद्भुत मिसाल से अभिभूत होने के फलस्वरूप एक बेहतर समाज के सपने को साकार बनाने के उद्देश्य से छात्र-छात्राओं के मध्य एक अनौपचारिक प्रयोग का प्रयास किया। इस प्रयोग के माध्यम से अनौपचारिक रूप में संवाद के द्वारा यह जानने का प्रयोग किया गया कि हिन्दू-मुस्लिम छात्रों में कैसा पूर्वाग्रह है? अगर पूर्वाग्रह है तो उनके परस्पर संवाद से ही

निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया। इस प्रयोग में छात्र या छात्राओं को धार्मिक मनोविज्ञान से जुड़े प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित और प्रोत्साहित किया गया। यह प्रयास उनके अंतरमन को टटोलने और पूर्वाग्रहों को समझने तथा इसे दूर करने के लिये अनिवार्य था।

एक मुस्लिम छात्र ने धार्मिक मान्यताओं के संदर्भ में प्रश्न रखा। उसने यह पूछा कि 'अच्छा सर यह बताइये कि मैं बड़ों के पैर क्यों छूता हूँ जबकि मुस्लिम मान्यता ऐसी नहीं है'। उसने यह भी प्रश्न पूछा कि 'मुस्लिम लोग आखिरकार कभी भी मंदिर क्यों नहीं जाते हैं? संवाद के पश्चात् हम सभी लोग इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रत्येक धर्म की अपनी अलग-अलग मान्यताएँ हैं। लेकिन इन मान्यताओं में जो अन्तर दिखाई देता है, इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। अगर कोई मुस्लिम अपने धार्मिक मान्यताओं से परे हटकर पैर छूता है तो इसमें कुछ भी गलत नहीं है, बशर्ते यह स्वेच्छा से हो, आनन्द से हो और सहजता से हो।

एक हिन्दू छात्र ने अपने गाँव के मुस्लिम मनोविज्ञान के बारे में जानकारी दी, उसमें मुस्लिमों के मनोविज्ञान को समझने का पाठ था। इस छात्र का यह कहना था कि गाँवों में मुस्लिमों को ऐसा लगता है कि वे असुरक्षित हैं। दूसरी ओर हिन्दुओं को ऐसा लगता है कि मुस्लिमों की जनसंख्या ऐसी ही बढ़ती रहेगी तो हिन्दू इस देश में अल्पसंख्यक बन कर रह जाएंगे। इस विचार के आलोक में जो संवाद हुआ, उसका निष्कर्ष यही निकला कि इन मान्यताओं के पीछे मूल रूप से राजनीतिक मान्यताओं का प्रभाव है अन्यथा दोनों समुदायों को साथ-साथ

रहकर एक दूसरे से असुरक्षित महसूस करने की कोई आवश्यकता नहीं है। विश्व के सभी देशों के अल्पसंख्यकों का अध्ययन यही स्थापित करता है कि अल्पसंख्यक वर्ग में एक स्वाभाविक असुरक्षा की भावना होती है। भारत में भी ऐसा ही है लेकिन इस स्वाभाविक असुरक्षा को राजनीतिज्ञ अपने वोट-बैंक के लिए और ज्यादा बढ़ाते हैं। सभी छात्र/छात्राएँ इस निष्कर्ष से सहमत भी हुए।

एक मुस्लिम छात्र ने ऐसे ही संवाद के दौरान अपना मत रखा। युवा छात्र/छात्राओं के मन-मस्तिष्क को किस प्रकार धर्म ने एक खास चिन्तन के दायरे में कैद कर रखा है, यह समझने के लिए यह अनुभव रोचक हो सकता है। उस छात्र ने तीन बिन्दु पर प्रकाश डाला।

- इस्लाम धर्म दुनिया में सबसे अच्छा है क्योंकि यह महिलाओं की रक्षा करता है। इस संदर्भ में सऊदी अरब का उदाहरण देते हुए उसने कहा कि वहाँ तीन पुरुषों को चौक पर फांसी दे दी गई क्योंकि वे महिलाओं के अपमान में दोषी पाए गए थे।

- एक मुस्लिम छात्र के पैर छूने के संबंध में उस छात्र की बड़ी कड़ी प्रतिक्रिया थी। उसने स्पष्ट रूप से कहा कि देवबंदी असली मुस्लिम होते हैं, बरेलवी नहीं। देवबंदी अल्लाह के सामने झुकते हैं, और किसी के सामने नहीं। वे मुहम्मद साहब की इबादत नहीं करते हैं क्योंकि वे भी एक इन्सान हैं।

- एक पंडित जी जो हिन्दू से अब मुस्लिम हो चुके हैं, ने बताया है कि अयोध्या से राम लौटे तो उन्होंने 600 जानवरों की बलि दी। यद्यपि उससे इस के संबंध में यह पूछा गया कि क्या तुमने पंडित जी से इसका स्त्रोत जानना चाहा, तो वह मौन हो

गया।

छात्र/छात्राओं के आपसी संवाद के द्वारा इस बिन्दु पर सहमति हुई कि सिद्धांततः सभी धर्म महिलाओं का सम्मान करते हैं। यह अवश्य है कि प्रत्येक धर्म में एक ऐसा वर्ग अवश्य होता है जो धर्म के बुनियादी सिद्धान्तों का अनुशरण करता है। कुछ वर्ग ऐसा भी होता है, जो कर्मकांडी ज्यादा होता है लेकिन धर्म के मर्म से वह कोसों दूर होता है। प्रत्येक धर्म में एक ऐसा तबका भी अवश्य होता है जो न कर्मकांडी होता है और न ही वसूलों के पालन में निष्ठावान होता है।

देवबंदी और बरेलवी के संदर्भ में यही आम राय बनी है कि यह धार्मिक विभाजन क्षैतिज आधार पर होता है। इसमें श्रेष्ठता की कोई मान्यता नहीं होती है, कालांतर में यह श्रेष्ठता, अहंकार और एक खास किस्म के सामन्ती अहंकार से जुड़ जाता है। ऐसी प्रवृत्ति भी प्रत्येक धर्म में देखी जा सकती है। यह ईसाई धर्म में कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट के रूप में है, बौद्ध धर्म में हीनयान-महायान के रूप में है, जैन धर्म में श्वेताम्बर-दिगम्बर के रूप में है तो हिन्दू धर्म में ब्राह्मण-दलित के रूप में देखा जाता है। सभी छात्रों का यही मानना था कि धर्म के प्रत्येक बिन्दु को व्यापक आयाम से देखा जाना चाहिए। सामान्यतः धर्म के मामले में विस्तृत दृष्टिकोण को भी संकुचित कर दिए जाने का चलन है।

धर्म संबंधी इसी विचार-मंथन में एक हिन्दू छात्र ने दो-तीन पक्ष रखे। उसने यह पूछा कि मुसलमान क्रिकेट मैच में भारत के जीतने पर ताली नहीं बजाते हैं बल्कि वे पाकिस्तान के जीत पर खुशी मनाते हैं। निश्चित रूप से ऐसी प्रवृत्ति सभी सजग

भारतीयों को दुःखी करती है। इसका उत्तर एक मुस्लिम छात्र ने ही दिया। उसका कहना था कि जो व्यक्ति भारत में निष्ठा नहीं रखता है, वह सच्चे अर्थों में धार्मिक रूप से भी निष्ठावान नहीं हो सकता है। दोनों ही बातें मूलतः निष्ठा और समझदारी से सम्बन्धित हैं। यह एक परिपक्व उत्तर था, जिससे सभी छात्र सहमत भी हुए। इसी उत्तर के संदर्भ में एक अच्छा संदर्भ भी आया। आस्कर अवार्ड जीतने के बाद ए० आर० रहमान ने समूचे भारतीयों का धन्यवाद ज्ञापित किया, वहीं दूसरी ओर पाकिस्तान क्रिकेट टीम के कप्तान शोएब मलिक ने ट्वेंटी-ट्वेंटी विश्व कप में भारत के हाथों फाइनल में पराजित होने के पश्चात् समूचे विश्व के मुस्लिमों से इस हार के लिये क्षमा मांगी। दोनों ही मुसलमान हैं, लेकिन दोनों के सोच में और दिशा में व्यापक अंतर है। मुस्लिमों के संदर्भ में अक्सर ऐसा होता है कि हम नकारात्मक निष्कर्षों को तुरन्त ही मान लेते हैं। सभी छात्र/छात्रायेँ इस बात से सहमत हुए कि उन्हें अपनी राय बनाने से पहले तथ्यों की जाँच पड़ताल करनी चाहिए, अपने चिन्तन को पूर्वाग्रह से बचाते हुए तार्किक रूप से एक सकारात्मक राय बनानी चाहिए। इसी चर्चा में मुसलमानों में जबरदस्ती राष्ट्रवाद ठूसने का एक प्रसंग आया। एक मुस्लिम छात्र के चाचा, जो बी० ए० के विद्यार्थी थे, उन्हें एक कमरे में बन्द कर जबरदस्ती 'वंदे-मातरम्' कहलाया गया। यह निश्चित रूप से एक हिंसा है। यह व्यक्ति की गरिमा का अपमान है और उसकी धार्मिक भावना का अनादर भी। अगर कोई मुसलमान स्वेच्छा से कोई काम करता है तो वो ठीक है अन्यथा किसी किस्म की जबरदस्ती एक खास

किस्म की गुंडई है, जिसका बहुलतावादी लोकतंत्र में कोई आदर नहीं है।

मुस्लिम जनसंख्या बढ़ा रहे हैं। यह एक आम मान्यता और पूर्वाग्रह है जो मेरे छात्रों में भी विद्यमान था। अक्सर कोई भी मान्यता नकारात्मक होने के बाद भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वतः ही पहुँच जाती है। इन छात्रों को तथ्यों के द्वारा जब मैंने यह समझाया कि जनसंख्या वृद्धि का मनोविज्ञान धर्म की तुलना में कहीं ज्यादा व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक हैसियत और उसके परिवेश पर निर्भर करता है। शिक्षा और समझदारी भी इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कारण है। तथ्यों के आलोक में मेरे छात्रों का पूर्वाग्रह तुरन्त ही स्वतः विलीन हो गया।

आतंकवाद के संदर्भ में की गई चर्चा भी छात्रों की सोच को समझने में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। मुम्बई में पाकिस्तान समर्थित चरमपंथियों द्वारा की गई आतंकवादी कार्यवाही के दुस्साहस के संदर्भ में विभिन्न मुस्लिम छात्रों की प्रतिक्रिया भिन्न लेकिन रोचक रही। विभिन्न मुद्दों को बिन्दुवार ऐसे समेटा जा सकता है।

- एक छात्र का कहना था कि प्रत्येक लक्ष्य की तरह इस्लामिक आतंकवाद का भी निश्चित ही एक लक्ष्य होगा, आखिरकार भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी आतंकवादियों का एक धड़ा सक्रिय था।
- इस्लामिक आतंकवाद फिलीस्तीन समस्या के कारण है।
- कुछ छात्रों का मानना था कि आतंकवाद के पीछे मूलतः आर्थिक कारक और कारण उत्तरदायी हैं।
- ए० टी० एस० चीफ हेमन्त केरकरे की हत्या स्वयं हिन्दू अतिवादियों ने की है, ऐसा कई छात्रों की राय थी।

● कुछ छात्रों का यह भी मानना था कि इस आतंकवाद की जड़ वस्तुतः मुसलमान हैं।

● कुछ छात्रों ने यहाँ तक कह डाला कि भारत को तुरन्त ही पाकिस्तान पर आक्रमण कर देना चाहिए। इसी से इस्लामिक आतंकवाद का सफाया हो सकता है।

आतंकवाद किसी भी भारतीय के लिए एक संवेदनशील मुद्दा है, लेकिन आतंकवाद की चर्चा के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि छात्र भयंकर भ्रांति, भय और आक्रामकता के शिकार हैं। छात्रों के प्रत्येक बिन्दुओं पर विस्तृत चर्चा की गई। धर्म का क्या अर्थ है? आतंकवादी कौन है और क्या चाहते हैं? क्या धर्म को आतंकवाद से जोड़ा जाना उचित और तार्किक है? एक अच्छे धार्मिक होने का क्या अर्थ है? इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कक्षा में कई दिनों तक चर्चा होती रही। इसी चर्चा के परिणाम को तीन-चार स्तरों में देखा गया। पहले चरण में छात्र अपने दृष्टिकोण से चिपके रहे। दूसरे चरण में उनमें कुछ लचीलापन आया। तीसरे चरण में उन्होंने दूसरों के दृष्टिकोण को सुनना आरम्भ किया। चौथे चरण में उन्होंने परस्पर विचार-विमर्श आरम्भ किया और अंततः पाँचवें और अंतिम चरण में वे एक ऐसे आम राय पर सहमत हो सके, जो न केवल तार्किक था बल्कि उचित भी था। मसलन सभी छात्र इस राय पर सहमत होते दिखाई पड़े कि आतंकवाद का कोई मजहब नहीं होता है। आतंकवाद किसी भी रूप में क्यों न हो, अंततः देश के लिए खतरा है। देश न हिन्दू का है, न मुस्लिम का है बल्कि सभी का है। फलतः सरकार को आतंकवाद के विरुद्ध सख्ती से निपटना चाहिए। यह सभी छात्रों की आम

राय थी, जिस निष्कर्ष पर वे स्वयं ही पहुँचे।

इस समूची चर्चा में कई रोचक तथ्य भी आए जो हमारे सामाजिक मनोविज्ञान की समस्या को इंगित करते हैं। मसलन-मुसलमानों द्वारा बसाई जा रही कालोनी में भी प्रत्येक हिन्दू खरीददार द्वारा पहला प्रश्न यही पूछा जाता है कि इस कालोनी में कोई मुसलमान को जमीन तो नहीं बेची जा रही है ? एक हिन्दू लड़की द्वारा मुस्लिम लड़के के साथ विवाह के पश्चात उसका धर्म-परिवर्तन कर दिया जाता है। कुछ हिन्दू छात्रों द्वारा इस धर्म-परिवर्तन के मुद्दे को उठाये जाने पर एक मुस्लिम छात्रा का यह जवाब था कि एक व्यक्ति के धर्म परिवर्तन से एक हज़ का पुण्य हासिल होता है। यद्यपि वह छात्रा इसकी कोई धार्मिक पुष्टि नहीं कर सकी। विचार - विमर्श के दौरान ऐसे ही न जाने कितने प्रसंग थे जो इन युवाओं के अंतरमन की उन तहों को खोलते हैं जिनमें पूर्वाग्रह, अतार्किकता, मिथ्या-तथ्य, अविश्वास, भय और असुरक्षा की काली छाया है।

इस छोटे से प्रयोग के आधार पर लेखक इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि भारत में गंगा-यमुनी संस्कृति के सकारात्मक तथ्य अवश्य विद्यमान हैं परन्तु आज हिन्दू-मुसलमान दोनों पास-पास रह रहे हैं, साथ-साथ नहीं। हिन्दुओं और मुसलमानों के मुहल्ले अलग-अलग हैं। दोनों ही समुदायों को एक दूसरे के तौर-तरीके, त्योहार और जीवन-शैली के बारे में न्यूनतम जानकारी है। ज्यादातर मुस्लिम छात्रों को यह पता नहीं था कि हिन्दू होली क्यों मनाते हैं ? दूसरी ओर, हिन्दू छात्र/छात्राओं को यह मालूम नहीं था कि ईद मनाने के पीछे क्या कारण है ?

हमारी शिक्षण-व्यवस्था और पाठ्यक्रम में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रत्येक धर्म के लोगों को दूसरे के धर्म के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त हो। अच्छी जानकारी के साथ-साथ शिक्षण संस्थाओं में ऐसी व्यवस्था और माहौल निर्मित करना चाहिए जो धार्मिक विरोधाभास को दूर करते हुए बहुलतावादी भारतीय समाज की संरचना को और ज्यादा समृद्ध कर सके। शिक्षण संस्थाओं में ऐसे मंच और माहौल का निर्माण आज समय की माँग है जो विश्व के सबसे युवा देश में, युवाओं के पूर्वाग्रह को दूर कर सके और एक स्वस्थ सोच निर्मित कर सके। इन सारे प्रयासों में शिक्षकों की भूमिका भी सबसे महत्वपूर्ण होगी, जिन्हें अंततः इन सारे प्रयोगों का बीड़ा अपने कंधों पर उठाना पड़ेगा। वैज्ञानिक और पूर्वाग्रह रहित सोच इन प्रयोगों की प्राथमिक आवश्यकता है। आखिरकार डॉ० खान और डॉ० चौहान तीन वर्षों से साथ-साथ रह सकते हैं तो दो समुदाय क्यों नहीं साथ-साथ रह सकते हैं ? हम पास-पास तो हैं ही। •

“काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संसार में एक विशेष उद्देश्य और निश्चित कार्यक्रम लेकर उत्पन्न हुआ है। अपने मंदिर के ज्ञानमय स्तम्भों से अंधकार में पड़े हुए संसार को प्रकाश देने और मनुष्य मात्र को परम ज्योतिर्मय परमेश्वर की झाँकी दिखाने के लिए यह पैदा हुआ है।”

- पं० मदन मोहन मालवीय

मूल्यों के विकास में शिक्षा की भूमिका

स्वर्गीया डॉ० श्रीमती नीलम श्रीवास्तव

(इस लेख की लेखिका ने यह लेख मूल्य-विमर्श में प्रकाशित करने हेतु अपनी मृत्यु से पूर्व हमें दिया था, इसलिए हम यह लेख उनके प्रति श्रद्धांजलि रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।)

परिवर्तन एक सार्वभौमिक सत्य है। वर्तमान तकनीकी युग भी इसी परिवर्तन की देन है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन होते हैं, इसी क्रम में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन समय की गुरुकुल परंपरा ने विद्यालयों का स्वरूप ले लिया है। आज की वर्तमान शिक्षा प्रणाली पाश्चात्य शिक्षा से अत्यधिक प्रभावित है। शिक्षण संस्थानों में मूल्य, संस्कार, नैतिकता, पवित्रता की शिक्षा को गौण मानकर विचारों एवं प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। आज की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य वस्तुनिष्ठ एवं भौतिकता पर आधारित ज्ञान प्रदान करना है। जहाँ शिक्षा पुस्तकों एवं संदर्भों के दायरे में सीमित होकर रह गई है। यहाँ मूल्य-शिक्षा का कोई स्थान नहीं है, इसी कारण आज के बच्चे संस्कार एवं मूल्यों को भूलते जा रहे हैं। उनमें बड़ों का आदर, दया, करुणा, प्रेम, सहिष्णुता, भाईचारे की भावना के स्थान पर कट्टर प्रतिद्वन्द्विता की भावना विकसित हो रही है। इसका ज्वलंत उदाहरण है आज की चुनाव प्रणाली, जिसने लोगों में घृणा एवं शत्रुता की भावना को जन्म दिया है। अतः आज आवश्यकता है ऐसी शिक्षा प्रणाली की जो संस्कार एवं मूल्यों पर आधारित हो।

केवल भारतवर्ष में ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व में आज लोगों में मूल्यों की कमी पाई जा रही है। मूल्य शिक्षा वह शिक्षा है जो मनुष्य को मनुष्य

बनाती है। मूल्य शब्द अंग्रेजी के वैल्यू का हिन्दी रूपान्तरण है और वैल्यू लैटिन भाषा के वैलेयर से बना है, जिसका अर्थ है कीमत या उपयोगिता। अतः जो कार्य हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं, वांछनीय हैं एवं उपयोगी हैं, मूल्य कहे जाते हैं। शिक्षा द्वारा मनुष्य में वह अंतर्दृष्टि उत्पन्न होती है, जिससे वह सही गलत की पहचान कर सके। भारतीय दर्शन में व्यक्ति का परम मूल्य मोक्ष माना गया है और उसे उसी प्रकार शिक्षित भी किया जाता है। जैसे की शंकराचार्य ने भी कहा है “सा विद्या या विमुक्तये” अर्थात् शिक्षा वह है जो मनुष्य को मोक्ष प्रदान करे। प्राचीन समय में शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य व्यक्तित्व उन्नयन होता था। गुरुकुल में बालक आदर्श जीवन, मूल्य आधारित इन्द्रिय संयम, अनुशासन एवं मानवतापूर्ण व्यवहार करना सीखता था। इस समय पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यवहारिक ज्ञान को महत्व दिया जाता था। जिससे बालक में पवित्रता एवं संस्कार जैसे गुण विकसित होते थे। स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार शिक्षा ऐसी हो जो मनुष्य का निर्माण करे एवं उसके व्यक्तित्व को निखारे। पहले माना जाता था कि यदि धरती पर कोई पुण्य भूमी है तो वह भारत है जहाँ सद्कर्म, मानवता, पवित्रता एवं संस्कार का विशेष महत्व है। यहाँ की शिक्षा प्रणाली में इन सभी तथ्यों का अपना विशेष स्थान है परन्तु आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं आज की

शिक्षा प्रणाली प्रतिद्वन्द्विता को बढ़ावा दे रही है। आज बच्चों में संस्कार की कमी का मुख्य कारण दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली है। आज बालको में उन व्यवहार की कमी पाई जा रही है, जिससे उनका व्यक्तित्व निखरता है, जैसे सभी का यथायोग्य अभिवादन, मृदुभाषी होना सहयोग की भावना रखना इत्यादि। मूल्यों के हास का प्रमुख कारण परिवार का टूटना है। प्राचीन समय में संयुक्त परिवार होते थे, जहाँ परिवार के बहुत सारे सदस्य मिलजुल कर रहते थे। उनमें आपसी सहयोग, सहायता, सम्मान एवं परस्पर व्यवहार की प्रधानता होती थी। लेकिन आज संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार ने जगह ले ली है, आज परिवार में माता-पिता और एक भाई या बहन होते हैं। इसलिए यहाँ बच्चों के परस्पर व्यवहार का अवसर कम प्राप्त होता है। आज का बालक अपनी पढ़ाई के बोझ तले इतना दबता जा रहा है कि वह दुनियादारी भूलता जा रहा है। परिवार में बच्चे माता-पिता से अत्यधिक प्रभावित होते हैं, वे जैसा आचरण करते हैं वैसा ही आचरण बच्चे भी करते हैं। घर के बाद सबसे अधिक समय बच्चे अपने विद्यालय में बिताते हैं, जहाँ वे अपने शिक्षक से प्रभावित होते हैं। शिक्षक उनके लिए एक आदर्श होते हैं परन्तु आज शिक्षक बालकों को पुस्तकीय ज्ञान देने में अधिक विश्वास रखते हैं। यदि विद्यालयों में अनिवार्य रूप से मूल्य शिक्षा पढ़ाई जाए तो इस समस्या का समाधान हो सकता है, क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जो बच्चों के व्यवहार को परिष्कृत करके समाजोपयोगी बनाती है। इससे उसका व्यवहार निर्देशन एवं नियंत्रण भी होता रहता है।

प्राचीन समय में यह माना जाता था कि मूल्यों को व्यक्ति अपने समाज की विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं ग्रहण करता है। इन्हें औपचारिक रूप से सिखाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि बिना मूल्यों के मनुष्य का व्यवहार नियंत्रित नहीं हो सकता। ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य के आचार विचार को सही दिशा देने में मूल्य-शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा के तीन पद हैं संज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक। सत्य, अहिंसा, दया, दान, सहयोग एवं सेवा इत्यादि मूल्यों की भावना विकसित करना, मूल्य-शिक्षा का परम लक्ष्य है। गाँधी जी ने कहा है कि सत्य एवं अहिंसा, मूल्यों के मूल्य हैं, क्योंकि इसके पालन से जीवन के सभी मूल्यों का पालन हो जाता है। अतः आज आवश्यकता है इस प्रकार की शिक्षा की जो बालक में मूल्यों का विकास करे। इसके लिए सभी प्रकार के शिक्षण संस्थानों में मूल्य शिक्षा को एक अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। साथ ही कुछ पाठ्येतर क्रियाओं का भी समावेश करना चाहिए, जैसे विद्यालय में प्रतिदिन प्रार्थना-सभा या प्रातःकालीन सभा अनिवार्य हो। इसी क्रम में राष्ट्रीय उत्सव, महापुरुषों के जन्मोत्सव, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन, खेल-कूद, सामुदायिक कार्य इत्यादि को भी आवश्यक रूप से महत्व देना चाहिए। मूल्यों का विकास तभी संभव है, जब शिक्षक भी मूल्य आधारित आचरण बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करें, क्योंकि जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि बच्चे अपने से बड़ों का अनुसरण करते हैं। उसे लगता है जो बड़े कर रहे हैं, वह कार्य उन्हें भी

करना चाहिए। इसलिए शिक्षक या अन्य सभी लोगों को प्रयास करना चाहिए कि वे मूल्य आधारित आचरण करें। विद्यालयों में मूल्यों की शिक्षा छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से दी जानी चाहिए, प्रत्येक कहानी का कोई उद्देश्य होना चाहिए। उनमें कुछ शिक्षा एवं संदेश होना चाहिए, वैसे पहले यह कार्य घर में दादी, नानी किया करती थीं, परंतु आज के परिवर्तनशील युग में यह संभव नहीं है। इसीलिए यह काम विद्यालय से ही संभव है। रेडियो एवं टेलीविजन में भी इस प्रकार के कार्यक्रमों को दिखाना चाहिए, जिससे बालक कुछ सीख सके, उसे आत्मसात कर सके और उसे अपने जीवन में लागू कर सके। बालकों को अधिकतर समय उन्हीं आचरणों को करने के लिए प्रेरित करना चाहिए जो समाज द्वारा मान्य हो, क्योंकि मूल्यों का विकास सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा होता है। विद्यालयी शिक्षा के पश्चात् बच्चों का सामना समाज से होता है यदि वे समाज के साथ सामन्जस्य स्थापित कर लेते हैं तो उन्हें समाजीकृत प्राणी माना जाता है अन्यथा वे समाज में बेकार कहलाते हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि आज के इस भागदौड़ के युग में जहाँ भौतिकता का वर्चस्व है, बच्चों को मूल्य-शिक्षा आवश्यक एवं अनिवार्य रूप में दी जानी चाहिए। क्योंकि बिना मूल्यों के वे पशु समान हैं, जो बिना सोचे विचारे समाज में रह रहा है। अतः विद्यालयों का यह परम कर्तव्य है कि वे अपने शिक्षण व्यवस्था में मूल्यों की शिक्षा का भी ध्यान रखें एवं उचित स्थान प्रदान करें, क्योंकि भारत में शिक्षा का परम लक्ष्य मोक्ष है और व्यक्ति का प्रमुख मूल्य मोक्ष है। •

“धर्म चरित्र-निर्माण तथा सांसारिक सुख का सीधा मार्ग है। इससे मनुष्यों में उच्च कोटि की निःस्वार्थ सेवा की भावना आती है, जिससे समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होता है।”

“मनुष्य के पशुत्व को ईश्वरत्व में परिणत करना ही धर्म है। मनुष्यत्व विकास ही ईश्वरत्व और ईश्वर है, मैं मनुष्यता का पूजक हूँ मनुष्यत्व के आगे जात-पात नहीं मानता।”

“वे लोग ही, जिनमें अप्रतिम उत्साह तथा धैर्य है, जिन्होंने आत्मोत्सर्ग की एक निष्ठ भावना को सतत विकसित किया है, जिनमें अपने उद्देश्य के प्रति अटूट निष्ठा है, और जिसे वे महान् तथा गरिमामय समझते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे संस्था की सेवा कर सकते हैं।”

- पं० मदन मोहन मालवीय

मानवाधिकार और मूल्यपरक शिक्षा

डॉ० हरीश्वर दीक्षित

शिक्षा प्राचीन काल से ही मूल्यपरक रही है। मूल्यपरक शिक्षा के कारण ही हमारी भारतीय संस्कृति आज भी सुरक्षित है। मूल्यपरक शिक्षा की ही देन है कि धर्म, श्रुति, स्मृति, सदाचार से संपृक्त कर्म, धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह, धीः, विद्या, सत्य, अक्रोध आत्मानुशासन- “आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचारेत्,” वसुधैव कुटुम्बकम्, परोपकाराय सतां विभूतयः, विद्या ददाति विनयं, सा विद्या या विमुक्तये, सर्वे भवन्तु सुखिनः जैसे उदात्त विचार आज भी मानव समाज को संजीवनी शक्ति प्रदान कर रहे हैं, जो मूल्यपरक शिक्षा के विधि पक्ष हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षा वल्ली में गुरुकुल आश्रम के अध्ययनोपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व आचार्य शिष्य को जो उपदेश देता है वह मूल्यपरक शिक्षा का उत्कृष्टतम निदर्शन है। आचार्य शिष्य को उपदेश देते हुए कहता है।

1. सत्यं वद सत्य बोलो।
 2. धर्मं चरु धर्म का आचरण करो।
 3. स्वाध्यायाद् मा प्रमद स्वाध्याय से प्रमाद मत करो अर्थात् नित्य प्रति कुछ न कुछ स्वाध्याय अवश्य करो।
 4. मातृ देवो भव माता को देवता मानो।
 5. पितृ देवो भव पिता को देवता मानो।
 6. आचार्य देवो भव आचार्य को देवता मानो।
 7. अतिथि देवो भव अतिथि को देवता मानो।
- आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुम् मा व्यच्छेत्सीः।

सत्यान् न प्रमदितव्यं धर्मात् न प्रमदितव्यं। स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यं। देवपितृकार्याभ्याम् न प्रमदितव्यं।

यानि अनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वया उपास्यानि ना इतराणि।

एष आदेशः एष उपदेशः एषा वेदोपनिषद् एतद् अनुशासनम् एवं उपासितव्यम्।

उपर्युक्त आदेश, उपदेश और अनुशासन को ही यदि हम मान लें तो वर्तमान मानव जीवन से मानवाधिकार की संकल्पना स्वयं समाप्त हो जायेगी। उपर्युक्त उपदेशों में तीन तरह के उपदेश हैं। प्रथम आदेशात्मक हैं जिसे हमें करना ही करना है, उसे किये बिना हम रह नहीं सकते। इसमें सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना, और स्वाध्याय से प्रमाद न करना अर्थात् प्रतिदिन कुछ न कुछ स्वाध्याय करना। यदि हम केवल इसी का पालन करें तो सत्य धर्म के सामने कुछ बच ही नहीं जाता जिससे कि मानवाधिकार का जन्म हो।

सत्य और धर्म का धरातल सार्वभौमिक शाश्वत और बहुत व्यापक है। इसी के अन्तर्गत आदेशात्मक वाक्य माता, पिता, आचार्य, अतिथि को देवता मानो। यह वाक्य सामाजिक छोटे-बड़ों के प्रति एक व्यवस्था देता है।

सत्य से, धर्म से, स्वाध्याय से, देव, पितृ कार्य से प्रमाद नहीं करना चाहिए। ये उपदेशात्मक वाक्य नैतिक मूल्यों की सुरक्षा एवं देवों तथा पूर्वजों

के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करते हैं। जो अनवद्य कर्म हैं उन्हीं का आचरण करो इसके अतिरिक्त नहीं। जो हमारे अच्छे आचरण व्यवहार हैं उन्हीं का अनुकरण करो इसके अतिरिक्त नहीं। यह अनुशासन है अर्थात् गुरु द्वारा उपदिष्ट अनुशासन। इस प्रकार आदेश, उपदेश और अनुशासन इन तीनों जीवन-मूल्यों से संपृक्त एवं अलंकृत कर आचार्य पूर्णमानव बना कर शिष्य को मानव समाज में गृहस्थ जीवन जीने के लिए प्रवर्तित करता है। यदि इसी आदेश, उपदेश और अनुशासन को एक भारतीय सांस्कृतिक मानव अपना ले तो मानवाधिकार की संकल्पना स्वयं निर्मूल हो जायेगी।

मूल्यपरक शिक्षा जिस पक्ष को इंगित करती है वह पक्ष अधिकार पक्ष नहीं अपितु कर्तव्य पक्ष है, क्योंकि जहाँ मूल्यों की बात की गयी है वहाँ अधिकार का कोई धरातल ही नहीं है। मूल्यपरक शिक्षा पूरे मानव समाज का आधार है, जिसका प्रारम्भ सृष्टि के आविर्भाव से हो जाता है। जन्मजात शिशु को अपनी माँ के गोद और दूसरे के गोद में अन्तर सद्यः प्रतीत होने लगता है। मूल्यपरक शिक्षा इतनी बलवती और दृढ़संस्कार युक्त होती है जिसका अभिमन्यु जैसा उदाहरण भारतीय संस्कृति में विद्यमान है। यद्यपि मूल्यपरक शिक्षा सम्पूर्ण मानव समाज का दृढ़ आधार है तथापि भारतीय समाज में इसकी विशेष झलक देखने को मिलती है।

भारतीय संस्कृति, जिसका प्राचीनतम धरातल वैदिक संस्कृति है, में स्वतंत्र रूप से मानवाधिकार की कोई संकल्पना नहीं है। भारतीय संस्कृति में केवल कर्म (Duty) की संकल्पना है। अधिकार शब्द कहीं आया भी है तो कर्म पालन के अर्थ में है जैसे-

कर्मण्येवाधिकारस्ते। यहाँ स्वतंत्र अधिकार की कोई बात नहीं कही गयी है, अपितु कर्म में अधिकार की बात कही गयी है। अर्थात् हमारा अधिकार केवल अपने कर्तव्य पालन का ही है। इसके अतिरिक्त हमारा कोई भी अधिकार नहीं है। **“कर्मण्येवाधिकारस्ते”** यह सार्वभौमिक संदेश संपूर्ण मानव जाति के लिए है और सृष्टि का प्रत्येक प्राणि यदि केवल अपना-अपना कर्तव्य करे तो अधिकार की कहीं बात ही नहीं उठती। **‘चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः’** में भगवान श्रीकृष्ण ने गुण और कर्म के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की बात कही है। इसमें कहीं अधिकार शब्द का प्रयोग नहीं किया है। अधिकार शब्द अधि उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से उरण् रपरः सूत्र के सहयोग से वृद्धि करने पर निष्पन्न होता है। कृ धातु का प्रयोग कर्तव्य पालन के अर्थ में है अधिकार के अर्थ में नहीं।

प्रश्न उठता है कि भारतीय संस्कृति में अधिकार शब्द जब है ही नहीं तो यह आया कहाँ से ? और इसका जन्म कहाँ से हुआ, आखिर मानवाधिकार की संकल्पना कैसे उभरी ?

जो हमारा कर्तव्य है वही दूसरों का अधिकार है। जब हम अपना कर्तव्य नहीं करते तो हमारे कर्तव्य से होने वाली दूसरे की आवश्यकताएं नहीं पूरी होतीं और वहीं पर मानवाधिकार की संकल्पना उसके मन में उभर जाती है। जैसे- अध्यापन एक अध्यापक का कर्तव्य (Duty) है और इस अध्यापन से पूरी होने वाली विद्यार्थी की आवश्यकता ज्ञान की प्राप्ति उसका अधिकार है। यदि अध्यापक अध्यापन का कार्य नहीं करता तो छात्र यह कहता है “मैंने शुल्क दिया है और पढ़ना मेरा अधिकार

है” यह उसने इसलिए कहा कि प्रथम पक्ष (अध्यापक के पक्ष) से अपने कर्तव्य का पालन अध्यापन नहीं किया गया। अतः छात्र के मन में अपने अधिकार के प्रति जागृति आ गयी। इससे यह सिद्ध है कि कर्तव्य-पालन न करना ही अधिकार की संकल्पना को जन्म देता है। एक दूध मुँहे बच्चे का अधिकार अपनी माँ के दूध पर है और माँ का कर्तव्य है कि वह उसे दूध पिलाये। यदि वह ऐसा नहीं करती तो न्यायालय उस बच्चे को अधिकार दिलाता है। इससे स्पष्ट है कि यदि केवल अपना कर्तव्य करते जायें तो अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठता। प्राचीन भारतीय संस्कृति में मानवाधिकार की संकल्पना मानवाधिकार के रूप में नहीं अपितु दायभाग (उत्तराधिकार) के रूप में रही है।

यह कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति में अधिकार की कोई संकल्पना नहीं है, जो भी संकल्पना है वह कर्म की है। अधिकार की संकल्पना आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की देन है। 13वीं शताब्दी में मानवाधिकार का प्रथम घोषणा पत्र मैग्नाकार्टा प्रकाश में आया जिसका संशोधित रूप 1689 के बिल ऑफ राइट्स. (नागरिक अधिकार पत्र) में किया गया। इसके बाद 1776 में अमेरिकी क्रान्तिकारियों ने जीवन की स्वतंत्रता के लिए इसे आवश्यक माना। संयुक्त राष्ट्रसंघ के गठन के तीन वर्ष बाद 10 दिसम्बर 1948 में महासभा ने मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा की जो स्वतंत्रता, न्यायपूर्ण शान्ति, मानवीय गरिमा से सम्बन्धित था। मानवाधिकार की संकल्पना मानव के लिए है जो प्राचीन सांस्कृतिक मानव से सर्वथा भिन्न मानव के लिए है। आज का मानव अपने कर्तव्य से हटकर केवल अधिकार की

बात करता है। मानव शब्द अपत्याधिकार में भव (उत्पन्न) अर्थ में “मनोर्भवः मानवः” से निष्पन्न है जिसका अर्थ है मनु की सन्तान। ये मनु कौन थे ? मार्कण्डेय महापुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती के अनुसार सावर्णि मनु जो सूर्य से उत्पन्न हुए वे मनु कहलाये और उनकी सन्तान मानव कहलायी। मनु के समय मानव की शास्त्र विहित एक सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें गुण कर्म के अनुसार चातुर्वर्ण्य मया सृष्ट के अनुपालन में चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्मों की शास्त्र-विहित अलग-अलग व्यवस्था थी। और उसी व्यवस्था के अनुसार चारों वर्ण अलग-अलग कर्तव्य पालन करते थे। सबके नियत कर्म थे कोई किसी दूसरे वर्ण के कर्तव्याधिकार में हस्तक्षेप नहीं करता था। अतएव उनमें कोई अन्तर्विरोध नहीं था, इसलिए तत्कालीन समाज में मानवाधिकार की कोई संकल्पना नहीं थी। हाँ यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में न्याय एवं दण्ड की व्यवस्था थी। यदि कोई वर्ग अपना शास्त्र विहित कर्तव्य नहीं करता या अपने कर्तव्य के विरुद्ध आचरण करता था तो उसके लिए दण्ड का विधान मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहाराध्याय में विहित है, किन्तु कहीं मानवाधिकार शब्द की चर्चा नहीं है। इससे भी स्पष्ट है कि मानवाधिकार शब्द की संकल्पना लौकिक संस्कृत साहित्य की संकल्पना है जिसका प्रथम बार प्रयोग सम्भवतः महाभारत में हुआ है। मानवाधिकार लौकिक मानवों के अधिकारों की चर्चा करता है और लौकिक मानव इस प्रपंचात्मक जगत के तमाम दुर्गुणों से ग्रस्त रहता है। यही कारण था कि दुर्योधन ने पाण्डवों को मात्र पाँच ग्राम जो कि उसके हिस्से से बहुत कम

था, देने से इन्कार कर दिया। अतः यदि यह कहा जाय कि मानवाधिकार का सूत्रपात लौकिक संस्कृत साहित्य में महाभारत काल से होता है तो कोई अनुचित नहीं होगा। यहाँ यह ध्यातव्य है कि महाभारत का वृत्तान्त “दायभाग” (उत्तराधिकार) से सम्बन्धित है न कि मानवाधिकार से। मानवाधिकार संवैधानिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकार है। जबकि “दायभाग” सांस्कृतिक परम्परा से, कुल परम्परा से अथवा पूर्वजों से प्राप्त सम्पत्ति का अधिकार है, जो स्वतः प्राप्त हो जाता है जैसे- कुटुम्ब रजिस्टर में पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी अचल सम्पत्ति (भू-सम्पत्ति) में पुत्र का नाम स्वयं अंकित कर दिया जाता है। आज मानवाधिकार की संकल्पना सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि से हटकर पूर्णतः राजनीतिक हो गयी है। बहुत सी छोटी-छोटी बातों के लिए यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है।

मूल्यपरक शिक्षा में मानवाधिकारों की भूमिका अधिकार के रूप में नहीं अपितु कर्तव्य के रूप में रही है। कर्तव्य सस्नेह किया जाता है, प्रेम पूर्वक उसे बाँटा जाता है और अधिकार छीना जाता है, जबरदस्ती लिया जाता है, जिसमें कोई रचनात्मक सोच नहीं होती अपितु कर्तव्य न करने वाले के प्रति नकारात्मक सोच होती है। कर्तव्य सांस्कृतिक संकल्पना है और अधिकार राजनीतिक संकल्पना। मूल्यपरक शिक्षा कर्तव्य के धरातल पर खड़ी है, अधिकार के धरातल पर नहीं। मूल्यपरक शिक्षा में पर्याप्त उदारता है जबकि अधिकार में कोई उदारता नहीं होती।

मूल्यपरक शिक्षा व्यवस्था में प्रातः मध्याह्न एवं सायं तीन बार संध्या पूजन की व्यवस्था है और मात्र एक बार सायं-भोजन की व्यवस्था है किन्तु

आज तत्कालीन मूल्यपरक शिक्षा की वह व्यवस्था व्यावहारिक रूप में बिल्कुल उल्टी दिखाई दे रही है। आज सुसंस्कृत समाज में मात्र एक बार पूजन और तीन बार भोजन की व्यवस्था हो गयी है। आज का मानव वह सांस्कृतिक मानव नहीं रह गया है जिसके लिए आज मानव शब्द प्रयोग हो रहा है। कर्तव्य की वह संस्कृतिक संकल्पना नहीं रह गयी है जो मानवाधिकारों को निर्मूल कर देती थी। स्पष्ट है जब हम अपनी संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों से खिलवाड़ करेंगे, उसके मूल्यों में बंधकर आचरण नहीं करेंगे तो किसी समाज की यही स्थिति होगी जो आज मूल्यपरक शिक्षा से कुछ अलग-थलग पड़ी हुई भारतीय समाज की हो रही है। आवश्यकता है पुनः भारतीय संस्कृति के मौलिक ग्रन्थों, वेदों, उपनिषदों, पुराणों और आर्ष ग्रन्थों के मौलिक अध्ययन की, जिससे कि हमारे विचार शुद्ध हो सकें, वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव जागृत हो सके तथा हमारा मन शुभ संकल्पों से युक्त हो सके जिससे कि मानवाधिकार जैसी संकल्पनाएं स्वतः निर्मूल हो जायें।

‘तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।’ इति॥ •

“कौशल पूर्ण व्यय, लाभ युक्त और न्याय संगत कर तथा आय और व्यय का-पूर्ण सामन्जस्य तभी सम्भव है, जब विवेकशील तथा परिश्रमी जन समुदाय उस पर अपने विचारों का शासन करे।”

- पं० मदन मोहन मालवीय

भविष्य की युवा-पीढ़ी

रविशंकर सिंह

आज दरअसल हम जिस युग में रह रहे हैं वह काफी प्रगतिशील व आधुनिक युग है। जिस तरह से हमने सफलता के नये-नये आयामों को छुआ है, उससे लगता है कि भविष्य में हम वे सारे मुकाम हासिल कर सकेंगे, जो अभी कल्पनीय लगते हैं। लेकिन हम जिन मुकामों को पाने की आस लगाए बैठे हैं, वे किसके बलबूते संभव हो पाएंगे? हमें निश्चय ही इसे विमर्श का विषय बनाना चाहिए कि आखिर हमारे सपनों का यथार्थ क्या है और इसे पूरा कौन करेगा ?

बहरहाल हम भविष्य की युवा पीढ़ी को इस दायरे में देखें तो एक उम्मीद की किरण दिखाई देती है। हालांकि हमारे सपनों में, कौन है, क्या है, कैसे है, क्यों है ? इसपर विचार करते हैं तो इसकी धुंधली तस्वीर भी उभरती है। लेकिन हमें भविष्य की युवा पीढ़ी के मर्म को समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि भविष्य के सपने इनके कंधों पर ही टिके हैं। आज हमारे देश की जनसंख्या में लगभग 60 करोड़ युवा शामिल हैं जो 18-35 वर्ष की उम्र के हैं। इन युवाओं में वे सारे गुण हैं, जो हमारे सपनों को पूरा करने व देश को आगे ले जाने का माद्दा रखते हैं। इनमें जोश, उमंग, उत्साह, साहस, वीरता और आत्मविश्वास सहित वे तमाम सारे गुण हैं जो किसी कार्य/सपने के निमित्त जरूरी होते हैं।

इन युवाओं में कुछ ऐसी चीजें भी आने लगी हैं जो सपनों, लक्ष्यों व उद्देश्यों पर तुषारापात कर सकती हैं। हमें स्वीकारना होगा कि अगर हम युवाओं को सकारात्मक सोच के साथ संबल प्रदान करें तो दुनिया हमारी मुट्ठी में होगी। यहां दुनिया के

मुट्ठी में होने से मतलब है कि हम सर्वत्र प्रेम को उपस्थित करा पाने में सफल हो सकेंगे।

इधर कई दिनों से 'विजन 2020' का राग खूब अलापा जा रहा है। इसके तहत राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, आर्थिक विश्लेषकों सहित तमाम लोग कह रहे हैं कि आने वाले भविष्य में हम शिखर पर होंगे। हम मानने लगे हैं कि हम विकसित व आर्थिक रूप से मजबूत देश अब बनने ही वाले हैं। हालांकि सपने देखने व बुनने में कोई बुराई नहीं है, लेकिन भारत जैसे राष्ट्र के लिए 'राष्ट्र स्वप्न' होना जरूरी है। इसके अभाव में युवा पीढ़ी का सफर कठिन हो जाएगा या यों कहें कि हमारी योजना के सपने बेमकसद हो जाएंगे।

फिर हमें भविष्य की युवा पीढ़ी को देश की सोच व आत्मा की मजबूती से जोड़ना आवश्यक है। हमारे युवा मन में उन करोड़ों गरीबों, बेरोजगारों, बीमारों, अशिक्षितों और कमजोर वर्ग के लोगों के दुःख-दर्द को उतारना होगा ताकि वे इसके लिए प्रेरित हो सकें। आज के युवा भविष्य के निर्माता हैं अतः उनके लक्ष्य स्पष्ट होने ही चाहिए। यहाँ लक्ष्य से तात्पर्य उसके व्यक्तिगत व सामाजिक लक्ष्य के क्षेत्र की व्यापकता से है। मेरा मानना है कि भविष्य की युवा पीढ़ी को कर्मशील बनाना होगा। यह बात ध्यान में रखने की है कि कर्मों से ही पहचान बनती है। फिर उसके कर्मों का दायरा भी बढ़ना चाहिए तथा उसको अपने कर्म से लगाव रखना होगा।

युवा दरअसल वही है जो नया है, कुछ नया पसंद करता है कदम बढ़ाता जाता है राहपर। आज भविष्य की पीढ़ी को तमाम क्षेत्रों में आगे आना

होगा। देश उसकी राह तक रहा है क्योंकि उसके जोश, उमंग व प्रेरणा आज वक्त के साथ-साथ देश की मांग हैं। युवाओं को आज खुद को पहचानने की जरूरत है। चूंकि वीरता की शोभा धीरता में होती है, अतः युवाओं को धीरता धारण करनी होगी। युवा पीढ़ी को प्रतिभा विकसित करनी होगी, क्योंकि इससे आत्मशक्ति आती है। अतः युवा जो भी करें उसे आत्मा से जोड़कर देखें। यह सत्य है कि हम जितना स्वार्थी होंगे, उतने कमजोर होंगे। दरअसल अपने व दूसरों के कल्याण की प्रक्रिया एक ही है। यह मंथन करने लायक विषय है। आज जरूरत है जीवन को यथार्थ तल पर समझने की, अपनी समस्याओं को पहचानने की। समस्याओं की जड़ों को काटने की बजाए नष्ट करना होगा ताकि भविष्य की पीढ़ी हमारे कृत्यों पर गर्व कर सके।

युवाओं को आदर्श के मूल समझने होंगे, कारण ये मानव की विवेकशीलता की उपज हैं। लिंकन ने आदर्श को सभ्यता की पोषक ग्रंथि कहा है। टाल्सटाय ने तो यहाँ तक माना है कि जो व्यवहार आदर्श प्रेरित न हों वे समाज के लिए भयंकर हैं। अतः हमें अर्थात् युवाओं को आदर्शवादिता पर बल देना होगा। आदर्श वही होता है जो सत्य पर आधारित व नैतिकता व मूल्यों से प्रभावित हो। यहाँ एक बात का उल्लेख जरूरी है कि आदर्श विरोधी सफल हो सकते हैं पर समाज की स्वीकृति कतई नहीं पा सकते।

आज के युवा मन को स्वयं को प्रकाश समझना होगा। जागते, सोते, खेलते, स्वप्न देखते खुद को ज्योतिपुंज समझना जरूरी है, इससे आत्मविश्वास मजबूत होगा जो हमारे व देश

के सफर (सपने, अरमां देश के) में काम आवेगा। आज मुल्क की प्रतिभा को जगाना जरूरी है। मुल्क के सोए प्राणों को फिर से गति देने की जरूरत है। मुल्क के युवा मन में फिर से एक मंथन पैदा करना जरूरी है। अगर मनन, चिन्तन, विचार पैदा हो जाएं युवामन में तो यकीन जानिए कि हवाओं का रुख भी मोड़ा जा सकता है। इससे हम विश्व के घने अंधकार को मिटा पाने में सक्षम हो सकते हैं। और यह तय है कि युवा इसके निमित्त उपस्थित हो सकेंगे।

आज दरकार है कि युवा पीढ़ी स्वयं से संवाद करे। उसकी कार्यशीलता आज विश्व की जरूरत बन गयी है। संवाद के सभी पक्षों व आयामों को समझने की महती आवश्यकता अब दिखाई दे रही है। भविष्य की युवा पीढ़ी को सांझी विरासत पैदा करनी होगी, जिससे हम राष्ट्र की आत्मा से जुड़ सकें। युवाओं के कंधों पर संपूर्ण देश का दायित्व है जिसे निर्वहन करने हेतु देश के ताने-बाने को समझना जरूरी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबन्ध, 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?', काफी कुछ बयां करता है। इसमें उन्होंने लिखा है, 'हम कोई नौसिखिए नहीं हैं जो रातों रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हैं। हमारी महिमामयी परंपरा व उज्ज्वल संस्कार हैं - ये अनजाने-में भी हमें खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देते हैं। भारतीय युवा मन आज भी स्वाधीनता के बारे में सोचता है जो आज दीर्घ संस्कारों का फल है।' युवाओं को मार्टिन लूथर किंग (1963) की उस बात को सदैव स्मरण रखना होगा कि "सभी भगवान के बच्चे हैं।" दरअसल हमें अपनी विरासत

को बचाना होगा जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' व 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अवधारणा पर टिका है। धर्म, जाति, लिंग के सभी भेदों को हमें तोड़ना होगा क्योंकि युवा ही एक मात्र हथियार है जो इसे तोड़ सकता है।

आज ढेरों चुनौतियाँ हैं जिसे युवा पीढ़ी अपने सामर्थ्य से दूर कर सकती है। युवाओं को चुनौतियों को आमंत्रण देकर अपनी सामर्थ्यों की पैनी धार से दूर करना होगा। मौलिकता हमारी मूल संपदा है, हमें इसे विकसित करने के सभी प्रयास करने चाहिए। इससे आन्तरिक खुशी व प्रसन्नता आती है तथा इससे लक्ष्य आसान नजर आता है। आज की युवा पीढ़ी में तमाम विसंगतियाँ भी दिखाई देती हैं। लेकिन हमें दोष किसका है देखने की बजाए इस युवा पीढ़ी को डूबने से बचाना होगा। आज की वर्तमान स्थिति है कि डिस्कोथिम जाना, सिगरेट पीना और उधार लेकर फिल्में देखना आम बात है। इसे हर हाल में रोकना होगा। युवाओं की प्रतिभा तरासने पर राष्ट्र भी गौरवान्वित महसूस करता है। आज युवाओं को समय के कदम ताल पर चलते हुए खुद को निखारना होगा, मानसिक दृष्टि से, शारीरिक रूप से मजबूत बनकर उभरना होगा, क्योंकि दुनियां उनकी राह में पलके बिठाए इंतजार कर रही है। हालांकि भविष्य की युवा पीढ़ी के समक्ष ढेरों खतरे हैं परंतु इनको अपने कंधे मजबूत बनाने की जरूरत है। युवा मन को तकनीकी रूप से गुलाम, भावनात्मक रूप से कुंद बनाने की मुहिम जारी है। युवा पीढ़ी के कोमल एवं समस्याग्रस्त मन को सच्चाई से रू-बरू कराना होगा। जिंदगी की पहली को बूझने की जरूरत है कि नीति, मूल्य, आदर्श व संवेदनशीलता को हृदय में दबाए रखते हुए कुछ करना होगा।

एक बार सुभाषचंद्र बोस ने बापू को चिट्ठी में लिखा था कि, "आज जिस अग्नि के समक्ष युवा नंगा नाच कर रहे हैं, उस अग्नि को प्रज्वलित करने में देश के शहीदों की हड्डियों ने घी का काम किया है।" यह चिट्ठी आज भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'भारत कला भवन' में देखी जा सकती है।

मसलन हमारा कहना यह है कि आज और आने वाले समय में राष्ट्र को युवाशक्ति की आवश्यकता है। युवाओं के लिए पैसे की बजाए फौलादी चरित्र एवं चट्टानी मनोबल की जरूरत है। युवाओं को अपने अन्दर यात्रा करनी होगी। फिर देश की बागडोर थामने हेतु युवा पीढ़ी को आगे आना होगा। राजनीति, खेल, पत्रकारिता, विज्ञान, साहित्य सभी क्षेत्रों में आज हम भविष्य की युवा पीढ़ी से आशा ही नहीं विश्वास कर सकते हैं कि वे इन क्षेत्रों में आगे आएंगे। युवा वर्ग को जज्बे के साथ बढ़ना होगा, प्रतिरोध करना होगा और देश के नवनिर्माण में अपना सर्वस्व लगाना होगा। एक सहज उदारता व स्वस्थ सोच की दरकार है जिसे युवा पीढ़ी ही पूरा कर सकती है। अगर युवा पीढ़ी युवा है तो उसे युवा होने का हक अदा करना होगा। नये भारत को गढ़ने में युवा पीढ़ी ही भार वहन करने लायक है। नेतृत्व क्षमता, सृजनात्मक क्षमता से देश को सींचना होगा। आधुनिकीकरण के दौर में मूल्यों को बचाए रखना होगा वरन आनेवाला समय हमारे वजूद से सवाल करेगा। मैं युवाओं की पीढ़ी को दो पंक्तियों के माध्यम से आवाज देना चाहता हूँ, जिसे राहत इंदौरी ने कहा है -

सैलाबों से आँख मिलाओ तूफानों पे वार करो ।
मल्लाहों का चक्कर छोड़ो तैर के दरिया पार करो ।।

पंचायतीराज व्यवस्था के सशक्तीकरण में मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता

अर्चना सिंह

पंचायतीराज व्यवस्था स्थानीय स्वशासन के एक अंग के रूप में लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था को ग्रामीण जनता के दरवाजे तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम है। इस व्यवस्था में ग्रामीण जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं जो अपनी समस्याओं से भली-भाँति परिचित होते हुए, उनका निराकरण अपने अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर प्रदत्त अधिकारों द्वारा करते हैं। राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विभिन्न विकास योजनाओं जैसे-रोजगार योजनाओं, आवास योजनाओं, गरीबी उन्मूलन तथा अन्य विकास योजनाओं का संपूर्ण लाभ ग्रामीण जनता को ही मिले इसलिये ग्रामीण जनता का राज अर्थात् पंचायतीराज का होना आवश्यक है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी आत्मनिर्भरता को ही राष्ट्र की उन्नति का मूल मंत्र मानते थे। उनके अनुसार “स्वतंत्रता स्थानीय स्तर से प्रारम्भ होनी चाहिए और प्रत्येक गाँव का अपना स्वराज्य होना चाहिए जिससे वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति स्वयं करे, ताकि वह संपूर्ण प्रबंध स्वयं ही कर सके।”

प्राचीन भारत की ग्रामीण शासन व्यवस्था पंचायतों द्वारा ही लोकतांत्रिक शासन पद्धति से चलायी जाती थी। प्राचीन भारत के ग्रामीण परिवेश में पंचायतें अत्यन्त उन्नतशील अवस्था में थीं। पंचायतों के माध्यम से समस्याओं को सुलझाने वाले पंच-गणों को ‘पंचपरमेश्वर’ की संज्ञा दी जाती थी। सभ्य समाज की स्थापना से ही पंचायतीराज के आदर्श एवं मूल्य उसकी चेतना में विकसित होते रहे

हैं। वैदिक काल से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक विभिन्न कालों में जहाँ भी पंचायतें थीं वहाँ पंचायतों का स्वरूप भले ही भिन्न-भिन्न रहा हो लेकिन उन सारे स्वरूपों में एक दूसरे के साथ रहने, सहयोगपूर्वक कार्य करने और अपनी सारी समस्याओं को स्वयं सुलझाने की प्रवृत्ति निरंतर विकसित होती रही। सहकारिता, आत्मनिर्भरता तथा स्वावलंबन पंचायतीराज व्यवस्था के मूल्य थे। पराधीनता के समय जब हमारे देश पर मुगलों, अंग्रेजों आदि का शासन था तब उन्होंने अपनी सुविधानुसार या तो पंचायतों का प्रयोग किया या उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया, लेकिन तब भी जहाँ भी पंचायतें अपने अस्तित्व में थीं, उन्होंने अपने मूल्यों के अनुसार ही अपने दायित्वों का निर्वहन किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के नवनिर्मित संविधान के भाग-4 में वर्णित ‘नीति निर्देशक तत्वों’ के अनुच्छेद 40 में पंचायतों को स्थान दिया गया, जिसके अनुसार “राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिये कदम उठायेगा और उसको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य कराने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हो।” इस प्रकार पंचायतों को राज्य की इच्छा पर छोड़ दिया गया, जिससे पंचायतें अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पायीं। लेकिन पंचायतों के महत्व से हमारा राष्ट्रीय नेतृत्व भली-भाँति परिचित था, वह जानता था कि यदि भारत का संपूर्ण विकास करना है तो

पंचायतीराज व्यवस्था को ग्रामीण समाज के ऊपर पूर्णतया लागू करके ही भारत की आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है क्योंकि भारत की 74.3 करोड़ (सन् 2005) जनसंख्या गांवों में निवास करती है। इसलिए पंचायतीराज व्यवस्था जो कि ग्रामीण शासन व्यवस्था है, जिसमें प्रत्यक्ष रूप से सभी नागरिकों की भागीदारी देखने को मिलती है, जिससे सरकार की जानकारी बढ़ती है और वह अधिक उपयोगी सिद्ध होती है, को संवैधानिक मान्यता देकर संपूर्ण देश में समान रूप से लागू करने की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य से सन् 1992 में 73 वां संविधान संशोधन करके पंचायतों को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गयी, जिससे पंचायतीराज व्यवस्था को देश के सभी राज्यों में लागू करना राज्यों के लिये अनिवार्य हो गया। अन्यथा सर्वोच्च न्यायालय में राज्य के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। उदाहरण स्वरूप 73 वां संशोधन लागू होने के बाद भी बिहार में पंचायत चुनाव न होने पर केन्द्र ने इस मामले को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी, जिससे बिहार में 23 वर्षों बाद सन् 2001 में पंचायत चुनाव संपन्न हुए।

73 वें संविधान संशोधन के बाद संविधान में एक नया भाग, भाग-9 जोड़ा गया जिसका शीर्षक पंचायत है। इस अधिनियम में त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था (ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत, जिला पंचायत), संबंधित ग्राम पंचायत के सभी वयस्क मताधिकारियों द्वारा ग्राम सभा का गठन, प्रत्येक पंचायत की पांच वर्ष की कार्यवाधि तथा विघटन की दशा में 6 महीने के भीतर पुनः निर्वाचन की व्यवस्था, महिलाओं के लिए पंचायतों एवं पंचायत

अध्यक्ष पदों पर एक तिहाई आरक्षण (जिसमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाएं भी शामिल हैं), अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण (जिसमें इसी वर्ग की महिलाओं के लिए भी एक तिहाई स्थान आरक्षित है), पृथक राज्य वित्त आयोग तथा नियंत्रित चुनावों के लिए पृथक निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गयी है। पंचायतों को अपने पंचायत क्षेत्र में आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करने और उन्हें क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व भी प्रदान किया गया है। इस उद्देश्य से संविधान में एक नयी 11 वीं अनुसूची स्थापित की गयी है, जिसमें ग्रामीण विकास से संबंधित 29 विषय हैं, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं- कृषि, भूमि विकास और भूमि संरक्षण, लघु सिंचाई, पशुपालन, मत्स्य उद्योग, सामाजिक वानिकी, ग्रामोद्योग, आवास, पेयजल, सड़कें, शिक्षा, बाजार, मेले, स्वास्थ्य और स्वच्छता, स्त्री और बाल विकास इत्यादि।

पंचायतीराज व्यवस्था का मूल उद्देश्य गांवों का सर्वांगीण विकास करना एवं तृणमूल स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना करना है। इस संदर्भ में ए० आर० देसाई के अनुसार, “पंचायतीराज से अभिप्राय है पंचायतों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण विकास प्रणाली को गांवों पर लागू किया जाए, जिससे पंचायतीराज व्यवस्था को सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, संरचनात्मक एवं संस्थात्मक विकास एवं सामाजिक गतिशीलता को विकसित करके, राष्ट्र को एक नया सुनहरा संकेत दिया जा सके।”

73 वें संवैधानिक संशोधन के बाद अस्तित्व

में आये 'नवीन पंचायतीराज व्यवस्था' को एक ऐतिहासिक घटना और मौन सामाजिक क्रान्ति का प्रारम्भ माना जाता है। पंचायतीराज के द्वारा ही भारत की ग्रामीण जनता में राजनैतिक चेतना का उद्भव हुआ है, उन्होंने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप नीतियों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन के लिए राज्यों को अवगत कराया है। ई-पंचायत के माध्यम से संपर्क सूत्र की राजनीति का विकास संभव हो पाया है। आज गांव जिले व राज्यों के मुख्यालयों से जुड़कर अपनी समस्याओं से उन्हें और अच्छी तरह से अवगत करा पा रहे हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) में पारदर्शिता लाने के लिए केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय ने अपने नई दिल्ली स्थित केन्द्र में नरेगा के लिए राष्ट्रीय हॉटलाइन स्थापित की है। इस परियोजना से जुड़े परिवार या अन्य लोग मंत्रालय के अधिकारियों से प्रश्न पूछने, शिकायतें जमा करने तथा मदद मांगने के लिए इस निःशुल्क हेल्पलाइन का इस्तेमाल कर सकते हैं। पंचायतीराज के द्वारा ग्रामीणजनों में नेतृत्व क्षमता का भी विकास हुआ है। पंचायतों के माध्यम से लगभग 30 लाख लोगों को जनप्रतिनिधित्व प्राप्त होता है, जिसमें से लगभग 5 लाख से ज्यादा लोग नेतृत्वकारी भूमिका में होते हैं। नवीन पंचायतीराज व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इनके माध्यम से समाज के निचले वर्ग के लोगों जैसे- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण प्रदान कर उन्हें ग्रामीण राजनीति की धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी-से अब महिलाएं चूल्हे-चौके

तक ही सीमित न होकर निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में भी मुख्य भूमिका निभा रही हैं। महिलाएं अपने कर्तव्यों एवं मूल्यों के प्रति पुरुषों की तुलना में अधिक जागरूक हैं, इसलिए उनके गुणात्मक विकास कार्यों के कारण उन्हें पुरस्कृत भी किया जा रहा है। वर्ष 2008 में उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के काशी विद्यापीठ ब्लाक की 4 महिला ग्राम प्रधानों को 'निर्मल ग्राम' पुरस्कार प्रदान किया गया है। बिहार की दलित वर्ग की तिलिया देवी और अमेरिका देवी का नामांकन वर्ष 2005 के नोबेल शान्ति पुरस्कार के लिए उनके द्वारा किये गये सामाजिक उत्थान एवं गुणात्मक विकास कार्यों के लिए किया गया था। पंचायतों द्वारा केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा बनायी गयी विभिन्न विकास योजनाओं का संचालन भी किया जा रहा है, जिससे गांव विकास की ओर अग्रसर हो रहे हैं। वर्तमान समय में मुख्य रूप से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना 2006, राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना 2005, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन कार्यक्रम 2005, भारतीय निर्माण योजना 2005, सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम 2001, इंदिरा आवास योजना 1985, स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना 1999 आदि योजनाओं द्वारा गांवों में सड़क, सिंचाई, आवास, पेयजल, रोजगार, स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा, बिजली, संचार आदि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जा रही है।

ग्रामीण जीवन के चहुमुखी विकास में जहाँ एक तरफ पंचायतें महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं वहीं दूसरी तरफ पंचायतों ने गांवों में भ्रष्टाचार, सामाजिक विषमता, जातिवाद, गुटबंदी, आपसी मनमुटाव,

सामन्तवादी प्रवृत्ति तथा राजनीतिक झगड़े एवं साम्प्रदायिक हिंसा को भी बढ़ावा दिया है। प्राचीन भारतीय गांवों में पंचायतों के माध्यम से ग्राम व्यवस्था का निर्धारण एवं संचालन किया जाता था, तब गांव के लोगों का जीवन व संस्कार 'भोगवादी' न होकर सहिष्णु, संतोषी एवं मातृभाषा पूर्ण था। लोगों का जीवन विश्वास, सच्चाई, ईमानदारी, परहितकारी, पारदर्शी, निश्छल, सरल आदि मूल्यों से समाहित था। यही कारण था कि प्राचीन भारत के गांवों को लार्ड मैटकाफ ने 'लघु गणराज्यों' की संज्ञा दी थी। लार्ड मैटकाफ ने सन् 1830 में ग्राममण्डलों, जिनका शासन संचालन पंचायतों द्वारा होता था, के कार्यों का वर्णन करते हुए लिखा था कि, "भारतवर्ष के ग्राममण्डल छोटे-छोटे लोकतन्त्रात्मक राज्य हैं, वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करते हैं। अतः किसी वस्तु के लिए उनको दूसरों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। अन्य शासन व्यवस्थाएँ समय-समय पर नष्ट होती गईं परंतु ग्राम मण्डल सदा जीवित रहे। हिन्दू, पठान, मुसलमान, मराठा, सिख एवं अंग्रेजों ने क्रमानुसार अपने राजतंत्र की स्थापना की, परंतु ग्रामशासन पूर्ववत् लोकतांत्रिक ढंग से चलता रहा। परंतु वर्तमान समय में व्यक्ति में मानवीय मूल्यों की कमी के कारण समाज में भ्रष्टाचार, गुटबंदी, जातिवाद आदि समस्याओं का जन्म हुआ है। व्यक्ति से ही समाज का निर्माण हुआ है, इसलिये व्यक्ति में मूल्यों के अभाव के कारण समाज भी मूल्यविहीन तथा अराजक हो गया है। केवल केन्द्र सरकार द्वारा बनायी गयी लगभग 150 विकास योजनाओं के बावजूद अभी भी भारत के अधिकांश राज्यों में गरीबी, अशिक्षा, भुखमरी, बेरोजगारी तथा जीवन

की मूलभूत आवश्यकताएं जैसे - अन्न, वस्त्र, तथा मकान तक भी लोगों को प्राप्त नहीं हैं। सामाजिक विषमता और उससे उपजी बुराईयां तो ग्रामीण समाज में फैले भ्रष्टाचार का एक अंग मात्र हैं। अर्थात् भ्रष्टाचार की समस्या मुख्य समस्या है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार केवल सरकारी अधिकारियों तक ही सीमित नहीं है, अब यह तृणमूल स्तर तक पहुँच चुका है, ग्राम प्रधान भी इससे अछूते नहीं रह गये हैं। ग्राम समाज की जमीनों को बेचना, इंदिरा आवास योजना का लाभ वास्तविक लाभार्थी को देने के लिए प्रधान एवं सेक्रेटरी द्वारा उससे कमीशन लेना, विभिन्न विकास योजनाओं का लाभ सभी ग्रामीणवासियों को देने की बजाय ग्राम प्रधान के आदमी को दिया जाना आम बात हो गयी है। मिड डे मील योजना जिसके संचालन का पूरा दायित्व ग्राम प्रधान एवं सेक्रेटरी का होता है, में बच्चों को कम पोषण वाला खाना देकर, सरकारी धन को हड़पने का कार्य ग्राम प्रधान एवं सेक्रेटरी द्वारा किया जाता है। पंचायतों में गुटबंदी भी एक प्रमुख समस्या बन गयी है, चुनाव के समय गांव अनेक गुटों में बंट जाता है और जीतने के बाद जीतने वाले गुट के लोगों का विशेष ध्यान रखा जाता है। महिलाओं तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों को तो 33% आरक्षण प्रदान कर दिया गया है, लेकिन उसका वास्तविक प्रयोग महिलाओं के पुरुष रिश्तेदारों एवं सामन्तवादी प्रवृत्ति के लोगों द्वारा किया जाता है, इसलिए समाज में 'प्रधानपति' तथा 'रबर स्टाम्प' जैसे शब्दों का प्रचलन बढ़ा है। निचली जाति की महिलाएं यदि प्रधान के रूप में अपने कर्तव्य का

पालन करने के लिए आगे बढ़ती हैं तो उन्हें अपमानित किया जाता है, डराया-धमकाया जाता है और कभी-कभी तो उनके चरित्र पर भी उंगली उठाई जाती है। वर्तमान समय में चल रही विभिन्न विकास योजनाएं ठेकेदारों, अफसरों, बिचौलियों के लाभ का साधन मात्र बनकर रह गयी हैं। 'नरेगा' योजना में मजदूरों की मजदूरी में घालमेल का मामला आये दिन संज्ञान में आता रहता है, साथ ही नरेगा में ठेकेदारों द्वारा कार्य कराने की योजना नहीं है, लेकिन अधिकांश जिलों में यह कार्य ठेकेदारों के माध्यम से ही कराया जाता है।

अतः पंचायतें भी मूल्यविहीन राजनीति का शिकार हो गयी हैं। भ्रष्टाचार एवं स्वार्थपरता ने लोगों को मानवीय मूल्यों से उदासीन कर दिया है, आज ऐसा कोई गांव दिखाई नहीं पड़ता जहां आपसी सामंजस्य हो, लोगों में एक-दूसरे के प्रति सम्मान एवं प्रेम की भावना हो, लोग 'स्वहित' के बजाये 'परहित' की चिन्ता करें। यदि लोग अपने मानवीय मूल्यों जैसे सच्चाई, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, पारदर्शिता, विश्वास, दायित्वबोध, परहितकारिता, न्यायप्रियता आदि को धारण कर उन्हें अपना जीवन मूल्य बना लें और उसी के अनुसार आचरण करें तो समाज में व्याप्त बुराइयों पर स्वतः विजय प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि मूल्यविहीनता ही संपूर्ण समाज में व्याप्त बुराइयों की जड़ है। लोगों को अपने मानवीय मूल्यों का विकास करके परिस्थितियों का निर्माता बनना चाहिए और सृजनात्मक और गुणात्मक कार्य करना चाहिए। यदि एक गांव का प्रधान अपने मानवीय मूल्यों का विकास कर उसके अनुसार आचरण करे तो वह अपने गांव की दशा में आमूलचूल परिवर्तन

ला सकता है, परंतु गांव की दशा में परिवर्तन का दायित्व केवल ग्राम प्रधान पर ही नहीं है, इसके लिए गांव के प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन मूल्यों के अनुरूप आचरण करना होगा। मानवीय मूल्यों में से एक सबसे महत्वपूर्ण मूल्य दायित्वबोध का है, अतः उसे अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होना होगा। सरकार द्वारा बनायी गयी विभिन्न योजनाओं के बारे में जानना और उसकी जानकारी अन्य लोगों को देना भी एक मुख्य कर्तव्य है, इस कर्तव्य का निर्वाहन कर व्यक्ति अपना अपने गांवों का विकास कर सकता है।

यदि पंचायत के लोग ईमानदारी, निष्ठा एवं सबके हित का ध्यान रखकर कार्य करें, जनभागीदारी के आधार पर गांव के विकास की योजनाएं बनाएं, लोगों की भावनाओं, रुचियों और गांव की बुनियादी आवश्यकताओं का ध्यान रखें, पंचायत के प्रधान एवं पंचायत प्रतिनिधि घर के मुखिया की भूमिका का निर्वहन करें तथा योजनाओं का क्रियान्वयन ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ करें तो एक पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल गांव के सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त होगा। मानवीय मूल्य को जीवन मूल्य बनाकर यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति आचरण करे, तो गांव क्या पूरे देश में व्याप्त बुराइयों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। •

“मैं उच्च शिक्षा उसी को कहूंगा जिसे पाकर मनुष्य विनम्र, परोपकारी सेवा भावी और कार्यतत्पर बन जाए।”

- महात्मा गांधी

मानवीय मूल्यों के हास के कारण तथा शारीरिक शिक्षा द्वारा मूल्यों का विकास

डॉ० अर्चना सिंह

किसी राष्ट्र अथवा समाज का मूल्यांकन उस सम्पन्नता (धन, वैभव एवं सम्पदाओं) से नहीं किया जाता है बल्कि, उसका मूल्यांकन उसके व्यक्तिगत एवं जीवन मूल्यों के आधार पर किया जाता है। किसी व्यक्ति के मूल्य यह प्रदर्शित करते हैं कि वह व्यक्ति, समाज, देश एवं स्वयं के लिए कितना मूल्यवान है। व्यक्ति की गुणवत्ता उसके विचारों, भावनाओं एवं कार्यों पर निर्भर करती है। अतः व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति के विचारों, भावनाओं एवं कार्यों का विकास आवश्यक है, और मानवीय विकास के लिए मानवीय मूल्यों का विकास आवश्यक है।

आज के बदलते परिवेश के कारण व्यक्तियों में मानवीय मूल्यों का निर्माण होना अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान में मूल्यों की आवश्यकता इतनी ज्यादा अनुभव की जा रही है जितनी पहले कभी नहीं की गयी। आज की स्थिति में देखें तो मूल्यों का हास निरंतर दृष्टिगोचर हो रहा है। हिंसा, अनुशासनहीनता, घृणा, अविश्वास, अनास्था जैसी चीजें व्यक्ति के व्यक्तित्व में पल्लवित होती जा रही हैं। इसलिए आज इस ओर चिन्तनशील होना अनिवार्य हो गया है कि प्रारम्भ से ही बच्चों में इस प्रकार के मूल्य विकसित करें कि वह आगे चलकर ऐसे व्यक्तित्व के रूप में उभरें जिसका व्यक्तित्व स्वतंत्र, तर्क-पूर्ण संतुलित हो और जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय भाग ले सके।

वर्तमान समय में हमें सर्वत्र मूल्यविहीनता दिखाई

देती है। इस मूल्यविहीनता के दौर में विभिन्न मानवीय मूल्यों, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों के हास के अनेकों कारण हैं। सामान्य तौर पर मूल्यों के गिरते हुए स्तर का प्रमुख कारण जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाना है। बढ़ती हुई जनसंख्या, गरीबी, बेकारी, आतंक, मानवीय अधिकारों का हनन, अंधविश्वास, वस्तुओं और सेवाओं का असमान वितरण, पर्यावरण प्रदूषण, ऊर्जा संकट आदि के कारण मूल्य गिर रहे हैं। परन्तु निम्नलिखित कारक मूल्यों के हास के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं।

राजनैतिक मूल्य में हास के कारण - वर्तमान समय में हम राजनीतिक तनाव, आर्थिक दबाव, डर और कुंठा की अवस्था में जी रहे हैं। शोषण, भ्रष्टाचार, विखण्डन, स्वार्थ तथा आतंक अपने सर उठाये खड़े हैं। ऐसे समय में राजनैतिक मूल्यों में गिरावट के मुख्य कारण निम्न हैं -

1. सच्चे नेतृत्व का अभाव
2. राजनीतिक शोषण
3. आचार संहिता का अभाव
4. सुरक्षा तंत्र में अराजकता
5. अनुशासनहीनता

1. सच्चे नेतृत्व का अभाव - वर्तमान समय में सच्चे नेतृत्व की कमी महसूस की जा रही है। राजनैतिक पार्टियाँ, पार्टी की राजनीति से प्रेरित हैं। बहुत से राजनैतिक पदों पर वे लोग बैठे

हैं, जो पद के योग्य ही नहीं, जिससे देश में सच्चे नेतृत्व का अभाव देखा जा रहा है और मूल्यों में गिरावट आ रही है।

2. राजनैतिक शोषण - अधिकांश राजनैतिक नेता समाज के व्यक्तियों का शोषण अपने स्वार्थ के लिए कर रहे हैं। राष्ट्रहित तथा समाजहित को दरकिनार कर व्यक्तिगत हितों को पूरा करने में लगे हैं। वे राजनैतिक एजेण्डे (योजना) के स्थान पर व्यक्तिगत द्वन्द्वता को प्राथमिकता देते हैं। समाज में लोगों को दिग्भ्रमित कर अपने प्रतिद्वन्दी के विरुद्ध इस्तेमाल करते हैं। जिससे राजनैतिक मूल्यों का उचित विकास नहीं हो पा रहा है।

3. आचार संहिता का अभाव - वर्तमान में राजनीतिज्ञों में आचार संहिता का अभाव है। ये समाज तथा संविधान के नियमों को अपने अनुसार मोड़ते तथा निर्देशित करते हैं। राजनीतिज्ञ राजनीतिक भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। हमारा विधान भवन तथा संसद भवन अपनी गरिमा तथा आकर्षण खो चुका है तथा यहाँ गरिमा के विपरीत सारे कार्य हो रहे हैं।

4. सुरक्षा तंत्र में अराजकता - राजनीतिज्ञों तथा नेताओं की सलाह तथा निर्देश पर पुलिस प्रशासन तथा देश का सुरक्षा-तंत्र विभिन्न अपराधों को बढ़ावा दे रहा है तथा समाज के अराजक तत्वों को खुलेआम राजनीतिज्ञों का संरक्षण प्राप्त है, जिससे सुरक्षा तंत्र से लोगों का विश्वास समाप्त हो रहा है और मूल्यों में गिरावट आ रही है।

5. अनुशासनहीनता - समाज में अराजकता, सैनिक शासन, अजनतांत्रिक व्यवहार और अनुशासनहीनता बढ़ रही है और इन सब में कहीं न कहीं राजनीति शामिल है। निश्चित तौर पर राष्ट्र की प्रगति,

राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता आदि इससे प्रभावित हो रही है।

सामाजिक मूल्यों के हास के कारण - भारतीय समाज की वर्तमान स्थिति तथा सामाजिक मूल्यों के हास का डॉ० सम्पूर्ण सिंह ने अपनी पुस्तक *The Holistic Education* में वर्णन किया है कि मनुष्य ने अपने विचार तथा चिन्तन के आधार पर अभूतपूर्व वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति की है। परन्तु मानव एक व्यक्ति के रूप में दुखी तथा कुंठित है। उसमें शान्ति नहीं है तथा हर स्तर पर असंतुष्ट तथा दुःखी है। मनुष्य इतना भौतिकवादी, विलासी, कुंठित तथा दिग्भ्रमित है कि वह दूसरों के साथ प्यार, शान्ति तथा एकता के साथ जीने की कला को नहीं जानता है। सामाजिक मूल्यों के गिरावट के कारणों को हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं-

1. जाति व्यवस्था
2. सामाजिक असंगठन
3. वैवाहिक कारक
4. असामाजिक कार्यों में संलग्नता
5. भौतिकतावादी प्रवृत्ति
6. स्वार्थी प्रवृत्ति
7. सामाजिक अनुशासनहीनता
8. सामाजिक न्याय का अभाव
9. सामाजिक असंवेदनशीलता
10. सामाजिक शोषण

1. जाति व्यवस्था - हमारे समाज में जाति व्यवस्था है। जाति व्यवस्था एक प्रजातांत्रिक समाज के उत्थान में बाधा होती है क्योंकि यह राष्ट्रीयता के विरुद्ध है। इसकी वजह से जाति, ऊँच, नीच, कुल, समुदाय आदि के आधार पर समाज बँट जाता है।

2. सामाजिक असंगठन - हमारा समाज तेजी से छोटी-छोटी इकाईयों में जातिवादिता, भाषावादिता, क्षेत्रियता तथा समुदाय के आधार पर बँट रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप समाज में संगठन का अभाव है।

3. वैवाहिक कारक - परिवार के क्रियाकलापों में परिवर्तन, तलाक की दर में वृद्धि तथा दहेज की वजह से समाज में वैवाहिक संगठन जो कि दो परिवारों के मिलाने के माध्यम थे, समाप्त हो रहे हैं।

4. असामाजिक कार्यों में संलग्नता - सभी प्रकार के भ्रष्टाचार, बेईमानी, झूठ, धोखाधड़ी आदि की घटनाएँ अपने चरम सीमा पर समाज में हो रही हैं और विभिन्न असामाजिक कार्य ऊँचे से नीचे स्तर तक किये जा रहे हैं। जिससे लोगों में असामाजिकता पनप रही है।

5. भौतिकवादी प्रवृत्ति - व्यक्ति अधिक से अधिक भौतिकवादी और धन संग्रह की प्रवृत्ति रख रहे हैं। वे सामाजिक मूल्यों को अनदेखा कर किसी भी तरह से धन इकट्ठा करना चाहते हैं। वे रातों रात गैरकानूनी तरीके से धनी बनना चाहते हैं चाहे उसके लिये कुछ भी करना पड़े, जिससे सामाजिक मूल्यों में तेजी से गिरावट आ रही है।

6. स्वार्थी प्रवृत्ति - व्यक्ति लालची, स्वार्थी तथा अत्यधिक अहं रखने की प्रवृत्ति वाले हो रहे हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफल होने के लिए लोग अपने सुविधानुसार चलना चाहते हैं, जिससे सामाजिक मूल्यों में गिरावट आ रही है।

7. सामाजिक अनुशासनहीनता - समाज में सामाजिक अनुशासनहीनता अपने चरम पर है। चारों तरफ सामाजिक मूल्यों, सामाजिक नियमों तथा आचरणों

में गिरावट आ रही है। समाज में सामाजिक अनुशासनहीनता, सामाजिक सदाचार, सामाजिक संवेदना तथा बड़ों के प्रति आदरभाव में कमी आ रही है।

8. सामाजिक न्याय का अभाव - लोगों को न्याय नहीं मिल पा रहा है। सामाजिक न्याय की बात बीते समय की हो गई है। जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश व्यक्ति कुंठित, भ्रमित तथा दुःखी हैं।

9. सामाजिक असंवेदनशीलता - प्यार-दुलार, सहयोग, सहकर्म का भाव, भाईचारा, दूसरों की भलाई, समानता, सम्पन्नता तथा सामाजिक संवेदनशीलता समाज में देखने को नहीं मिल रही है। या यों कहें कि समाप्त हो गई है। इन गुणों या मूल्यों को सामाजिक तौर पर महत्व नहीं दिया जा रहा है और लोग अपने में इन मूल्यों को लाने के लिए प्रयासरत भी नहीं हैं।

10. सामाजिक शोषण - हर जगह सामाजिक शोषण हो रहा है। अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का शोषण करने में व्यक्ति तनिक भी नहीं हिचकिचाते हैं। वर्तमान समाज सामाजिक सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों पर अपना विश्वास खो रहा है। जिसकी वजह से व्यक्ति में इन मूल्यों का विकास नहीं हो पा रहा है।

आर्थिक मूल्यों के हास के कारण - दिन प्रति दिन आर्थिक मूल्यों में भी गिरावट आ रही है, जिसके निम्न प्रमुख कारण हैं :

1. तकनीकी तथा विज्ञान का विकास
2. भौतिकवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा
3. औद्योगीकरण तथा शहरीकरण में वृद्धि
4. मनोवैज्ञानिक कारक

1. तकनीकी तथा विज्ञान का विकास - वर्तमान समय विज्ञान एवं तकनीकी का है और इसने हमें असीमित शक्ति प्रदान की है। लेकिन इन शक्तियों का अबौद्धिक एवं गलत प्रयोग संपूर्ण मानव जाति को समाप्त कर सकता है और पृथ्वी से जीवन को समाप्त कर सकता है। विज्ञान तथा तकनीकी की प्रगति ने अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, भौतिकवादिता तथा असंवेदनशीलता को जन्म दिया है जिससे आर्थिक मूल्यों में गिरावट आई है।

2. भौतिकवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा - भौतिकवादिता की ललक में इंसान मशीन बन गया है। वह सुख, समृद्धि की लालसा में इतना व्यस्त हो गया है कि ईमानदारी, सामाजिक सेवा, मानवता की सेवा, संरक्षण की भावना तथा सहनशीलता जैसे गुणों के लिए उसके पास समय ही नहीं है, जिससे इन मूल्यों में गिरावट आई है।

3. औद्योगीकरण तथा शहरीकरण में वृद्धि - विज्ञान तथा तकनीकी की प्रगति से औद्योगीकरण तथा शहरीकरण को बढ़ावा मिला है। औद्योगीकरण में बेतहाशा वृद्धि हुई है, जिसकी वजह से पारंपरिक संयुक्त परिवार की प्रथा समाप्त होती जा रही है तथा एकाकी परिवार का जन्म हुआ है। ये परिवर्तन मूल्यों में गिरावट लाने के लिए जिम्मेदार हैं।

4. मनोवैज्ञानिक कारक - मनोवैज्ञानिक कारकों ने भी मूल्यों को प्रभावित किया है। धन संग्रह की इच्छा, उच्च आकांक्षा, अभिप्रेरणा, आवश्यकता जैसी प्रवृत्तियों ने भी व्यक्तियों का मूल्यों की ओर से झुकाव कम किया है।

धार्मिक मूल्य के हास के कारण - प्राचीन काल में धर्मों में लोगो की अत्यधिक आस्था थी और वे

अपने धर्म के लिए मर मिटने को तैयार थे। वे धार्मिक क्रियाकलापों में आवश्यक रूप से भाग लेते थे तथा वह उनकी संस्कृति का एक आवश्यक अंग होती थी। आज व्यक्ति अहम् से भरा है। वे अपनी भलाई में रुचि रखने लगे हैं तथा उनमें अन्य व्यक्तियों या धर्मों के लोगों के बारे में जानने या समझने की इच्छा नहीं है। जिसकी वजह से धार्मिक क्रियाकलापों में अत्यधिक गिरावट आई है तथा मूल्यों का हास हुआ है :

1. धार्मिक क्रियाकलापों की परिवार में कमी - परिवार द्वारा धार्मिक क्रियाकलापों के आयोजन न के बराबर हो रहे हैं, जिससे बालक धार्मिक मूल्यों को सीख नहीं पा रहे हैं। पूजा-पाठ तथा विभिन्न पर्वों एवं उत्सवों में भाग लेने तथा उन्हें देखने, सुनने, समझने से व्यक्तियों में विभिन्न नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों का विकास होता है जो कि परिवार में आज लगभग समाप्त हो गये है।

2. बदलती हुई संस्कृति तथा प्रथाएँ - आधुनिकीकरण ने हमारे रीति रिवाज तथा प्रथाओं को प्रभावित किया है। प्रारम्भिक समय में लोग आराधना तथा पूजन-पाठ में अत्यधिक समय बिताते थे, परन्तु आज इसमें गिरावट प्रदर्शित हो रही है। व्यक्तियों के रहन सहन के स्तर में परिवर्तन आया है जिसकी वजह से मूल्यों का हास हुआ है।

3. धन तथा शक्ति संचय की होड़ - वर्तमान समय में व्यक्ति अत्यधिक लालची प्रवृत्ति का होता जा रहा है। वह पैसा बटोरने में व्यस्त है। उनमें चारित्रिक पतन हो रहा है। बहुत से व्यक्ति चोर, डकैत, चोर व्यापारी तथा यौनाचारी बन गये हैं, जिससे धार्मिक मूल्यों में गिरावट आई है। व्यक्ति

नैतिक तथा चारित्रिक रूप से धर्म विरुद्ध कार्य करने लगे हैं।

4. धर्म और मजहब के झगड़े - स्वार्थ के लिए जाति-पाति, ऊँच-नीच, हिन्दू-मुस्लिम, मंदिर-मस्जिद आदि के झगड़े भी धार्मिक मूल्यों की गिरावट का एक मुख्य कारण है। लोगों की धार्मिक आस्था, विश्वास इन क्रियाकलापों से घटा है तथा इन मूल्यों में गिरावट आई है। नैतिकता के विकास में धर्म अपना योगदान नहीं कर पा रहे हैं।

5. आज की शिक्षा पद्धति - आज की शिक्षा पद्धति भी कुछ हद तक मुख्य कारण है, धार्मिक मूल्यों की गिरावट के लिए। आज की शिक्षा नैतिकता व धार्मिकता विहीन दिखाई पड़ती है, जिसके कारण विद्यार्थियों में बढ़ती अनुशासनहीनता चरम सीमा पर है।

शैक्षिक मूल्यों के हास के कारण - नागरिकों के निर्माण का दायित्व शिक्षा पर है क्योंकि मानव के संतुलित विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा द्वारा ही आदतों, प्रवृत्तियों, अभिवृत्तियों तथा कार्यकारी दक्षताओं का विकास किया जा सकता है। वर्तमान में शैक्षिक मूल्यों के हास के निम्न कारण हैं -

1. विद्यालय में नैतिक शिक्षा की सही रूपरेखा का अभाव
2. अत्यधिक प्रतिस्पर्धा
3. अत्यधिक सामाजिक दबाव
4. मूल्यवान अध्यापकों की कमी
5. सहगामी क्रियाकलापों का अभाव
6. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली
1. विद्यालय में नैतिक शिक्षा की सही रूपरेखा का

अभाव - मूल्यों की शिक्षा का अनुभव तो सभी करते हैं किन्तु उसकी कोई रूपरेखा निश्चित न होने के कारण विद्यालय में इसका सही रूप से विकास करने में असुविधा होती है। क्योंकि निर्धारित स्वरूप के अभाव में नैतिक शिक्षा देने में वैयक्तिकता एवं आत्मनिष्ठाता की संभावना बनी रहती है, जिसकी वजह से बालकों को नैतिक शिक्षा नहीं दी जाती जिससे वे मूल्यों को सीख नहीं पाते हैं।

2. अत्यधिक प्रतिस्पर्धा - विद्यार्थियों में आपस में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा होती है तथा श्रेणी के क्रम की वजह से वे किसी भी प्रकार से आगे बढ़ना चाहते हैं। वे इस प्रतिस्पर्धा के कारण अनुचित तथा दोषपूर्ण कार्य जैसे परीक्षा में नकल, नोट्स चुराना, गाइड बुक आदि का प्रयोग करते हैं जिससे मूल्यों का हास होता है।

3. अत्यधिक सामाजिक दबाव - वर्तमान में विद्यार्थियों पर उनके भविष्य तथा नौकरी और परीक्षा के अंक को लेकर घर, परिवार, समाज के लोगों द्वारा अत्यधिक दबाव डाला जा रहा है, जिससे वे मूल्यों को ताक पर रखकर सामाजिक दबाव से उबरना चाहते हैं और मूल्यों का हास हो रहा है।

4. मूल्यवान अध्यापकों की कमी - विद्यालय में शिक्षकों का व्यवहार, आचरण एवं जीवन दर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। वर्तमान में शिक्षकों में सत्प्रवृत्तियों, सदाचार, कर्तव्यपरायणता तथा अपने सहकर्मियों के साथ सद्व्यवहार का अभाव देखने को मिलता है जिससे बच्चों में नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और उनमें आवश्यक मूल्य विकसित नहीं हो पाते हैं।

5. सहगामी क्रियाकलापों का अभाव - विद्यालय में

वर्तमान में सहगामी क्रियाकलापों का आयोजन बहुत कम होता है जिसके कारण अनुशासन, नियम पालन, मिलजुलकर काम करने की भावना, विनम्रता, धैर्य, पर्यावरण शिक्षा, बागवानी आदि को सीखने के लिए बालकों को अवसर नहीं मिल पाता है जिससे उनमें मूल्यों का विकास नहीं हो पाता है।

6. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली - वर्तमान परीक्षा प्रणाली तथा शिक्षा पद्धति से बच्चे तनावग्रस्त होते हैं और वे परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए नकल आदि का सहारा लेते हैं, जिससे मूल्यों का हास होता है।

सौन्दर्यात्मक मूल्यों के हास के कारण - सौन्दर्यात्मक मूल्यों के हास के निम्न कारण हैं -

1. पाश्चात्य शैली का अन्धानुकरण
2. मूल्यविहीन प्रचार प्रसार के तरीके
3. रचनात्मक क्रियाकलापों का अभाव

1. पाश्चात्य शैली का अन्धानुकरण - छात्र-छात्राएं तथा व्यक्ति आखें बन्द कर पहनावे, बोलचाल का ढंग तथा रहन सहन के तरीके का अनुकरण पाश्चात्य देशों के अनुसार कर रहे हैं जिसकी वजह से अपनी संस्कृति की सुन्दरता तथा देशी रहन सहन के तरीके परिवर्तित हो रहे हैं, जिससे मूल्यों का हास हो रहा है।

2. मूल्यविहीन प्रचार प्रसार के तरीके - टी० वी० तथा विभिन्न प्रचार प्रसार के माध्यमों से बच्चे अवांछित तथा अवांछनीय कार्यक्रमों को देख रहे हैं। पॉप संगीत, डिस्को आदि का प्रचलन, विभिन्न विज्ञापनों द्वारा बालकों में मूल्यविहीनता आ रही है।

3. रचनात्मक क्रियाकलापों का अभाव - घर, परिवार, समाज तथा विद्यालय में रचनात्मक क्रियाकलापों का

अभाव है जिससे बालकों में रंगों की सार्थकता, रचनात्मकता, सौन्दर्य आदि मूल्यों का विकास नहीं हो पा रहा है।

शारीरिक शिक्षा द्वारा मूल्यों का विकास - शारीरिक शिक्षा तथा खेल-कूद के क्रियाकलाप विद्यालय के पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग होते हैं। खेल-कूद के विभिन्न क्रियाकलाप न केवल सर्वश्रेष्ठ मनोरंजन ही प्रदान करते हैं बल्कि इनका बालकों के संवेगों पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। स्कूल तथा महाविद्यालयों में खेलों की व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य बालकों में मानसिक, नैतिक तथा सामाजिक गुणों का विकास करना होता है। खेल-खेल में इन गुणों को विकसित करने के लिए अनेक अवसर आते हैं। इन कार्यक्रमों में भाग लेने से बालकों में खेल भावना के गुण जागृत होते हैं। खेल-कूद क्रियाकलापों में अत्यधिक भागीदारी से बच्चे नियमों का पालन, खेल क्षेत्र में अथवा बाहर अनुशासन का प्रदर्शन करना, विजय तथा पराजय में वांछित, सांवेगिक संतुलन बनाये रखना तथा जीवन के हर क्षेत्र में दूसरों के साथ सहयोग तथा सहानुभूति रखना सीखते हैं जिससे उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास होता है।

चूँकि शारीरिक शिक्षा तथा खेलकूद के कार्यक्रम अधिकांश रूप से सामूहिक होते हैं इसलिए इसमें बालकों के सामाजिक गुणों का विकास करने के अनेक अवसर मिलते हैं जिससे उनमें सहन शक्ति, कौशल प्रदर्शन, सहानुभूति की भावना, सहायता का स्वभाव, धैर्य, सामूहिक एकता की भावना का विकास होता है। ये क्रियाकलाप व्यक्ति में बेहतर स्वास्थ्य, ताकत, दमखम, शारीरिक सौन्दर्य तथा स्वास्थ्यप्रद आदतें भी विकसित करते हैं।

शारीरिक गतिविधियाँ विभिन्न आर्थिक स्तर, जाति, धर्म, तथा सामाजिक रीति रिवाजों वाले व्यक्तियों को एक समान मंच पर ले जाती हैं जहाँ वह समूह के अन्य सदस्यों से मिलते हैं। इस प्रकार के सम्पर्क से दूसरों के प्रति मित्रता, सहानुभूति, प्रेम तथा स्नेह जागृत होते हैं। विजय पराजय तथा दुर्घटना आदि कि स्थितियों में इस प्रकार की भावनाओं की विशेषतौर पर आवश्यकता होती है।

खेल में प्रायः ऐसी स्थितियाँ आती हैं जो व्यक्ति के अनुकूल न हों। निर्णायक का दोषयुक्त निर्णय तथा विरोधी का असहनशील व्यवहार अथवा गलती, क्रोध को जन्म देता है। खेल क्रियाकलाप उत्तेजना के समय शान्त रहना तथा निर्णायक के निर्णय का सम्मान करना सिखाते हैं, भले ही वह निर्णय दोषयुक्त क्यों न हो। इस प्रकार की परिस्थिति से बालकों में सहनशक्ति जैसे मूल्यों का विकास होता है, जो कि आज के समाज में बहुत आवश्यक है।

खेल कौशलों को धीरे-धीरे सीखना, त्रुटियों में निरन्तर सुधार करते रहना, धैर्य बनाये रखना (क्योंकि खेलों में अधीर होने से त्रुटियाँ अधिक होती हैं) लम्बी दूरी की दौड़ को हर हाल में पूरा करना, परिणाम के लिए देर तक इंतजार करना आदि से बालकों में धैर्य के गुण का विकास होता है। विभिन्न स्तर के खेलकूद प्रतियोगिताओं के आयोजन से अत्यधिक संख्या में बालकों में मूल्यों का विकास होता है। लम्बे समय तक चलने वाले मैचों से खिलाड़ियों के अलावा दर्शकों में भी धैर्य तथा स्वच्छंद मानसिकता का विकास होता है। दर्शकों

में भी आलोचनात्मक चिंतन खिलाड़ियों के प्रदर्शन तथा निर्णायकों के निर्णय के लिए विकसित होता है तथा दर्शक खिलाड़ियों का अनुकरण कर उनके नैतिक आचरण का अनुकरण करते हैं, जिससे उनमें अच्छे नैतिक गुणों का विकास होता है। खेल क्रियाकलाप खाली समय का रचनात्मक सदुपयोग करते हैं तथा प्रतियोगिता के परिणाम खिलाड़ियों तथा दर्शकों में उपलब्धि तथा आदर भाव का अहसास कराते हैं। इस प्रकार खेलकूद क्रियाकलाप एक साथ अत्यधिक संख्या में विभिन्न आयु वर्ग के लोगों, व्यक्तियों में सहनशक्ति, समस्या समाधान की योग्यता, निरीक्षण की क्षमता, खुशी, खाली समय का रचनात्मक उपयोग, उपलब्धि का अहसास तथा स्वयं तथा राष्ट्र और समूह के प्रति सम्मान तथा अन्य (जिसमें विरोधी खिलाड़ी भी शामिल हैं) व्यक्ति जो इससे जुड़े होते हैं और समाज के प्रति आदर जैसे मूल्यों का विकास करते हैं।

नियमों का पालन, न्याय युक्त होना अथवा उचित व्यवहार, शिष्टाचार तथा नम्रता ये सब गुण बालकों के प्राकृतिक स्वभाव में नहीं होते। खेल मैदान नियमों का पालन तथा अनुशासन को बढ़ावा देकर इस प्रकार के गुणों को बालकों को सिखाते हैं। आज के युग में ईर्ष्या, स्वार्थ, घृणा, असहनशीलता तथा अनुचित व्यवहार का प्रदर्शन बढ़ता जा रहा है। इस कारण आज के बालकों में वांछित नैतिक गुणों के विकास की बहुत आवश्यकता है इस कारण सामूहिक रूप से नैतिक गुणों के विकास के लिए खेलकूद का माध्यम सर्वोपयुक्त माध्यम है। •

मूल्य-चेतना का विकास : आधुनिक व्यावहारिक जीवन के सन्दर्भ में

डॉ० धर्मेन्द्र कुमार मिश्र

मानव जीवन की श्रेष्ठता एवं सफलता उसकी बौद्धिक प्रखरता से कहीं अधिक उसके जीवन मूल्यों पर निर्भर करती है। मानव जीवन मूल्यों के कारण ही पशु एवं वनस्पति जगत से भिन्न एवं श्रेष्ठ है। हम कह सकते हैं कि मूल्य मानव जीवन की सार्थकता हैं, उसका धर्म और अस्तित्व हैं। मानव को सच्चे अर्थों में सुसंस्कृत मानव बनाने का श्रेय मानव-मूल्यों को ही है। ये मूल्य शाश्वत हैं, मानव जन्म के साथ ही इनका प्रादुर्भाव हुआ है और यदि उनका अन्त होगा तो मानव की मानवता ही समाप्त हो जायेगी। यद्यपि इन सनातन एवं चिरन्तन मूल्यों को प्रकट करने के साधन व परिस्थितियाँ बदली हैं, लेकिन जैसे पात्र के आकार से पानी नहीं बदलता वैसे ही आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक किसी भी प्रकार के परिवर्तन से मूल्य नहीं बदलते। श्रद्धा, उद्यमशीलता, अहिंसा, सत्य, दया, सदाचार, विनम्रता आदि गुण प्राचीन काल से ही मनुष्य के आदरणीय रहे हैं। लेकिन जितना सत्य यह है, उतना ही सत्य यह भी है कि भौतिक विकास ने हमारे समाज और संस्कृति को सनातन मूल्यों एवं आदर्शों की लीक से हटाने एवं दिग्भ्रमित करने में कोई कसर शेष नहीं छोड़ी है। हमारे जिस सामाजिक एवं राष्ट्रीय चरित्र से ऐतिहासिक तूफानों एवं थपेड़ों ने हार मान ली थी, उस पर भौतिक सम्पन्नता की बढ़ती ललक से खतरा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि मूल्यों की व्यापकता एवं सार्वभौमिकता इस वैज्ञानिक युग में निर्विवाद बन गयी है। प्राचीन समय में जो मूल्य आचार थे, अब हम इन्हें उपचार कह सकते हैं। तब ये आहार थे,

अब इन्हें दवा कह सकते हैं। समृद्धि एवं वैभव के बीच रुग्ण विश्व मानवता को आज मूल्यों की विशेष आवश्यकता है। मूल्य निःसंदेह मानव चिन्तन की पराकाष्ठा के परिणाम हैं। जीवन दर्शन के व्यापक एवं अध्ययन की नींव पर टिके जीवन-मूल्यों एवं उद्देश्यों पर टिकी शिक्षा के उद्देश्य आज भौतिक सम्पदा के मोह जाल में फंसी विश्व मानवता का सर्वाधिक हित करने में सक्षम हैं। मूल्य ही तो मानवीय आचरण एवं व्यवहारों के मापदण्ड होते हैं। इन्हीं के द्वारा हम व्यक्ति या किसी समाज का उचित मूल्यांकन कर सकते हैं।

मूल्यों का आधार मानवीय अनुभव, सामाजिक परम्पराएँ एवं विभिन्न संस्कृतियाँ होती हैं। विविध जीवन मूल्यों के नियमन एवं विकास में आध्यात्मवाद, ईश्वरवाद, नियतिवाद एवं परलोकवाद आदि धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का समुचित योगदान होता है। आदर्शवादी दृष्टि से मूल्य सत्य-असत्य, अच्छे-बुरे, उपयोगी-अनुपयोगी, सुन्दर-असुन्दर तथ्यों का मूल्यांकन करता है और अच्छाई के रूप में इसका प्रयोग होता है। धर्मशास्त्र नैतिक नियमों के रूप में मूल्य स्वीकार करता है, वहीं दर्शनशास्त्र मनुष्य के जीवन के प्रति दृष्टिकोण को मूल्य की संज्ञा देता है। एक अन्य दृष्टि से मानव वृत्तियों के लिये मूल्य समाज के आदर्श-विश्वास, सिद्धान्त और मापदण्ड होते हैं। इसीलिए जब हम मूल्य-संकट की बात करते हैं, तो हमारा आशय इन्हीं मूल्यों के क्षरण से है और जब हम मूल्य-चेतना के विकास की चर्चा करते हैं, तो भी हमारा तात्पर्य उपर्युक्त मूल्यों की आधुनिक व्यावहारिक जीवन में स्थापना

से है।

यदि हम वर्तमान संदर्भ में सोचें तो हमें बोध होता है कि आज हमारे जीवन की सबसे बड़ी समस्या मूल्य-संकट की समस्या है। व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में हर स्तर पर हम इस समस्या से ग्रसित हैं। पिछले पचास वर्षों की अनेक भौतिक, आर्थिक, औद्योगिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक उपलब्धियों के बावजूद ऐसा नहीं लगता है कि हम एक अच्छे, सुखी और कल्याणमय समाज की स्थापना की ओर बढ़ रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति पर प्रगति, खुशहाली और मानव कल्याण के जो सपने हमने देखे थे, वे आज झूठे हो रहे हैं। इसकी पीड़ा नाना प्रकार से साहित्य में, बौद्धिक परिचर्चाओं में, आपसी संवादों में अभिव्यक्त हो रही है। किन्तु प्रायः ये अभिव्यक्तियाँ विश्लेषणात्मक न होकर मात्र भावात्मक स्तर तक ही सीमित रह जाती हैं। ये भावात्मक प्रतिक्रियाएं समस्या की विकरालता को तो अवश्य दर्शाती हैं, किन्तु उसके स्वरूप का, अन्तर्सम्बन्धों का तथा उसके कारण और निवारण का मार्ग ढूढ़ने में सहायक नहीं होती। बौद्धिक चिन्तन के अभाव में वे समस्या को और जटिल बना देती हैं, मनुष्य को असहायता और किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में ला देती हैं। आज का जन-साधारण और बौद्धिक वर्ग भी इसी दौर से गुजर रहा है।

मूल्य संकट की वर्तमान समस्या को समझने के लिए उसका विश्लेषण तीन स्तरों तक किया जा सकता है। ये तीन स्तर हैं : वैयक्तिक, सामाजिक और सांस्कृतिक। वैयक्तिक स्तर पर देखें तो आज समाज के प्रभावी वर्ग का हर व्यक्ति मात्र पैसा, पद, प्रतिष्ठा की त्रिपुटी में बँध कर रह गया है। उसके जीवन की हर चेष्टा, हर प्रयास इन्हीं की प्राप्ति के

उद्देश्य से होती है। इनकी प्राप्ति ही सफल जीवन की परिभाषा और कसौटी बन गयी है। जीवन व्यापार इनकी प्राप्ति के लिये एक चूहा दौड़ हो गया है और शिक्षा इस दौड़ में कुशलता प्राप्त करने का प्रशिक्षण। इस प्रकार सुखी जीवन की भी धारणा संकुचित हो गयी है। आज सुखी व्यक्ति उसे ही कहते हैं, जिसके पास अधिकाधिक भौतिक उपकरणों का संचय हो व जिसे इन्द्रियगत भोग की सभी सुविधाएं प्राप्त हों। इसी संचय और भोगवादी प्रवृत्ति का ही प्रतिफल उपभोक्तावादी संस्कृति के रूप में दृष्टव्य है।

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि उपर्युक्त कथन से हमारा यह आशय नहीं है कि हम जनसाधारण की आर्थिक, सामाजिक, भौतिक उन्नति की आकांक्षाओं को आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा प्रदत्त उपकरणों से जीवन को सुविधाजनक बनाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को हेय दृष्टि से देखते हैं। कठिनाई तो तब होती है जब मात्र भौतिक सुविधाओं को तथा दैहिक भोग-विलासों को ही जीवन का एक मात्र, चरममूल्य मान लिया जाता है तथा इनकी प्रगति के प्रयासों में अन्य जीवन एकांगी हो जाता है और व्यक्ति अपनी विराट मानवीय चेतना को खो कर मात्र उपभोक्ता बन कर रह जाता है। उपभोक्तावादी सभ्यता में मूल्य-संकट का यही मूल कारण है।

वैयक्तिक स्तर पर मूल्य संकट का दूसरा कारण है हमारी दोहरी नैतिकता-अपने लिए अलग और दूसरों के लिए अलग। दूसरों से हम बहुत ही उच्च नैतिक व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। किन्तु अपने स्वयं के आचरण के लिए उन ऊँचे मापदण्डों की आवश्यकता नहीं समझते। इस दोहरी नैतिकता

के उदाहरण हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में, व्यावसायिक कार्यक्षेत्र में, सभी जगह देखे जा सकते हैं। इसी से मिलती हुई एक और मूल्य-समस्या है- अधिकारों के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता और उसी के अनुपात में कर्तव्यों के प्रति उदासीनता।

इसीलिए वैयक्तिक स्तर पर जो मूल्य-संकट पैदा हो रहा है, उसके लिए वैयक्तिक मूल्यों की स्थापना ही एक मात्र सामाधान है। इसके लिए नैतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का विकास आवश्यक है। क्योंकि व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्य चेतना के अभाव में तुच्छ, तात्कालिक स्वार्थ पूर्ति के लिए व्यापक, दूरगामी सामाजिक हितों की बलि चढ़ाई जा रही है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त नाना प्रकार के दुराचार और भ्रष्टाचार इस सामाजिक मूल्य हीनता का ही परिणाम हैं।

सामाजिक मूल्य-चेतना हमें याद दिलाती रहती है कि हमारी सभी आत्मोपलब्धियाँ समाज से ही प्राप्त होती हैं। उन्हें प्राप्त करने का अधिकार हमें तभी मिलता है जब हम अपने नागरिक दायित्वों का और सामाजिक कर्तव्यों का निष्ठा पूर्वक पालन करते हैं। आज के जटिल, अंतर संबन्धित समाज का सामूहिक स्वास्थ्य हर व्यक्ति और हर वर्ग की कर्तव्य निष्ठा पर निर्भर है। हमारी सामाजिक रुग्णता सामाजिक चेतना की कुण्ठा का ही परिणाम है इसलिए आवश्यकता है सामाजिक मूल्य-चेतना के विकास की। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर व विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित सामाजिक मूल्यों का अध्ययन व अध्यापन आवश्यक है।

भारतीय समाज का सबसे सुदृढ़ मूल्य-आधार संयुक्त परिवार रहा है। इसमें व्यक्ति समस्त सामाजिक, नैतिक और मानवीय मूल्यों के पाठ

सीखता है। परिवार के सभी सदस्यों का हित-चिन्तन, उनकी देख-रेख, उनके सुख-दुःख में सहभागिता, मिल-जुल कर रहना, बाँट कर खाना, परस्पर स्नेह और सहायता की भावना आदि पारिवारिक मूल्य ही अच्छे समाज के स्वीकृत मूल्यों का आधार बनते हैं। किन्तु आज स्थिति इससे भिन्न होती जा रही है। पारिवारिक सम्बन्धों में सौमनस्य के स्थान पर वैमनस्य का वातावरण बनता जा रहा है। आज संयुक्त परिवार बिखर गये हैं। बड़े-बूढ़े सेवा, आदर और श्रद्धा के पात्र न रह कर अब बोझ माने जा रहे हैं। महानगरों में उनके रहने की ही व्यवस्था परिवार के बाहर अलग बने वृद्धाश्रमों में करने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। आज वर्णव्यवस्था का स्वस्थ स्वरूप विकृत होकर जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गया है। जिसके कारण सामाजिक समता प्रभावित हो रही है।

समाज में नारी का उत्पीड़न, दहेजप्रथा का बढ़ता प्रचलन, यौन शोषण आदि मूल्य हीनता का स्तर बढ़ता ही जा रहा है। इसलिये सामाजिक मूल्यों की स्थापना के लिये महिला सशक्तीकरण के मूल्यों की भी आवश्यकता है।

मूल्यों का सर्वाधिक पतन राजनैतिक जीवन में हुआ है। जनसेवा के स्थान पर आज की राजनीति मात्र छल-छद्म और जोड़-तोड़ द्वारा सत्ता हथियाने का खेल बन गयी है। नाना प्रकार के घोटाले, भ्रष्टाचार, अपराधियों एवं कालाबाजारियों का संरक्षण यही राजनैतिक चरित्र के लक्षण हो गये हैं। भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और भ्रष्ट अधिकारियों की मिली भगत से सार्वजनिक धन की खुली लूट हो रही है और जन साधारण, जो सैद्धान्तिक रूप से गणतंत्र का संप्रभु है, अपने धन एवं हित के अपहरण का मूक

दर्शक बन कर रह जाने के लिए विवश है। इसलिए राजनैतिक क्षेत्र में हो रहे मूल्य-क्षरण को रोकने के लिए राजनैतिक मूल्यों की शिक्षा एवं राजनैतिक मूल्य-चेतना की आवश्यकता है। इसके लिये जन सामान्य व जन प्रतिनिधियों के लिये मूल्य-शिक्षा प्रभावी साधन हो सकती है।

हजारों वर्षों के अन्तराल में विकसित भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न परम्परा हमारी समस्त मूल्य-चेतना का स्रोत है और उसकी अभिव्यक्ति भी। यही हमारी अस्मिता है, किन्तु आज सबसे अधिक विभ्रम इस सांस्कृतिक परम्परा के स्वरूप और अन्तर्निहित मूल्यों को लेकर है। भारतीय समाज का एक बड़ा वर्ग अपने सांस्कृतिक मूल्यों से प्रायः अनभिज्ञ है। सांस्कृतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण आयाम धार्मिक विश्वासों एवं नैतिक मान्यताओं का है। भारतीय चिन्तन परम्परा में धर्म शब्द कई अर्थों का वाचक है। उनमें सर्वोपरि अर्थ है नैतिकता। इसी अर्थ में उसे पुरुषार्थ व्यवस्था में प्रतिष्ठित किया गया है। धर्म के अनुरूप आचरण ही मानव जीवन को मूल्यवान बनाता है।

धर्म के विषय में एक महत्वपूर्ण बात है कि धर्म सर्वनियामक पुरुषार्थ है, अर्थात् कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ यह कहा जाय कि यहाँ धर्म (नैतिकता) का न होना भी चल जायेगा। तात्पर्य यह है कि कहीं भी अनैतिक (अधार्मिक) होने को मान्यता नहीं दी जा सकती- यह माना जायेगा कि सभी देश एवं सभी काल में धर्मानुसार ही काम होने चाहिए। अतः धर्म की स्थिति सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि व्यक्तिगत जीवन में नैतिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा सद्गुण और सदाचार से होती है और सामाजिक जीवन में

कर्तव्यपरायणता एवं दायित्व बोध से, किन्तु आज की प्रचलित धार्मिक मान्यता में सच्चाई, ईमानदारी, दूसरों का हित-चिन्तन, निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन, सामाजिक दायित्वों का निर्वहन, व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सामुदायिक हितों की प्राथमिकता आदि का कोई स्थान नहीं है। नैतिकता को धर्म से बहिष्कृत कर दिया जाना आज के मूल्य-संकट का एक प्रमुख कारण है। धार्मिकता का क्षेत्र मात्र पूजा-पाठ, देव-दर्शन, व्रत-उपवास, कथा-पारायण, गंगा स्नान तक ही सीमित रह गया है। आज धार्मिक विश्वास, नैतिक आदर्श और जीवन व्यवहार में कोई तारतम्य ही नहीं रह गया है। धर्म आज मानवजाति के साम्प्रदायिक वर्गीकरण का आधार बन गया है। इसलिए धर्म आज प्राणिमात्र के अभ्युदय का सूत्र न होकर साम्प्रदायिक उन्माद और हिंसा का कारक बन गया है। इन दुष्प्रवृत्तियों को भड़का कर अपनी व्यक्तिगत और राजनैतिक स्वार्थ-सिद्धि का साधन बना लेना हमारे सार्वजनिक जीवन में धर्म का वीभत्सतम रूप है।

इसलिये धार्मिक मूल्यों के संदर्भ में चिन्तन-मंथन की महती आवश्यकता है। धार्मिक मूल्य-चेतना के विकास के लिए वर्तमान धार्मिक मान्यताओं की समीक्षा अति आवश्यक है। साथ ही साथ धर्म शब्द का सही अर्थ और उसके स्वरूप को परिभाषित करने की भी आवश्यकता है। इसके लिए नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के शिक्षण में धर्म की भूमिका, वर्तमान धार्मिक भटकाव, वैज्ञानिक एवं सार्वभौम धर्म की संभावना आदि पर विचार करना आवश्यक है।

जीवन मूल्यों के क्षेत्र में सर्जनात्मक गतिशीलता का अभाव हमारे समस्त वैज्ञानिक, सामाजिक और

सांस्कृतिक मूल्य-संकट का आधारभूत कारण है। आज के सामाजिक जीवन के अनुरूप हम सार्थक मूल्यों का सृजन नहीं कर पा रहे हैं। नयी आर्थिक, प्रौद्योगिक और राजनीतिक चुनौतियों का सामना करने के लिए हमारे पास नये सिद्धान्त नहीं हैं। उनका हल केवल पश्चिम से आयातित आइडियोलॉजी के द्वारा नहीं हो सकता। इसलिए हमें उनके उदारवादी मानव मूल्यों को अपनी संस्कृति के जीवन-मूल्यों से जोड़कर एक नया समाज दर्शन या मूल्य-शिक्षा दर्शन विकसित करने की आवश्यकता है। साथ ही साथ उसे जनमानस में विशेषतः सार्वजनिक जीवन में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले नीति निर्णायक तथा विशेषज्ञ वर्गों में, दृढ़ता पूर्वक प्रतिष्ठित करने की भी आवश्यकता है, जिससे सामुदायिक कार्य व्यापार इन सामान्यतः स्वीकृत मूल्यों के नियंत्रण में सम्पादित हों। हमारी प्राचीन मूल्य-परम्परा में इस प्रकार के व्यावहारिक सामाजिक मूल्यों का प्रायः अभाव है।

इसलिए हमें अपनी समस्त प्राचीन परम्पराओं, शास्त्रीय मान्यताओं, जन सामान्य की धारणाओं और प्राचीन नीति ग्रन्थों को आधार बनाकर इस युग में हो रहे परिवर्तनों तथा वर्तमान काल की आवश्यकता को देखकर एक सुदृढ़ सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षिक मूल्य-व्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता है। इसके लिए दो प्रकार के उपाय किये जा सकते हैं-सकारात्मक मूल्य-शिक्षण तथा प्रभावी दण्डव्यवस्था। सकारात्मक मूल्य शिक्षण के अन्तर्गत देश की शिक्षा-प्रणाली में मूल्य-शिक्षा को अनिवार्य बनाना, मूल्यों की व्यावहारिक शिक्षा के विषय में शोध कराना और उसके लिए कारगर

उपाय ढूँढ़ना। प्रत्येक व्यवसाय (Profession) में आचार-संहिता (Code of Conuct) निर्धारित करना एवं उसका कड़ाई के साथ पालन करना, राजनीति में आने वालों के लिए विशेष रूप से आचार संहिता एवं योग्यता का निर्धारण करना आवश्यक होगा। मूल्य-चेतना के विकास का एक महत्वपूर्ण कारगर उपाय मैत्री-भावना (प्रेम) भी है। इसके अन्तर्गत मैत्रीभावना का सैद्धान्तिक ज्ञान तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

मैत्रीभावना भगवान बुद्ध का बताया एक आध्यात्मिक एवं मनोसामाजिक अभ्यास है। जिसमें मन से सबकी भलाई की कामना की जाती है। यह वस्तुतः अपने प्रेम को दूसरों के प्रति प्रवाहित करने का मानसिक अभ्यास है जिसे मैत्री भावना, प्रेम भावना, कल्याण भावना, शिवभावना, मंगल भावना, शुभ भावना आदि नामों से कहा जा सकता है। जीवन को स्वस्थ एवं सुखी बनाने की दिशा में खोज करने वाले सभी ज्ञानी महात्माओं एवं धर्मप्रवर्तकों ने मैत्री भावना को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मैत्री भावना धार्मिक उपदेशमात्र न होकर, वैज्ञानिक परीक्षणों से परीक्षित एक मानसिक चिकित्सा पद्धति है।

‘मूल्य-चेतना’ का विकास; से सम्बन्धित विचारों का उल्लेख करने के बाद यहाँ यह भी बतलाना उपयुक्त होगा कि इसकी व्यावहारिक शिक्षा के लिए स्कूली शिक्षा के साथ-साथ संचार माध्यमों का उपयोग भी सार्थक होगा। क्योंकि वर्तमान मूल्य-संकट के लिए टी०वी० आदि संचार माध्यम कम जिम्मेदार नहीं हैं। इसलिए इसका उपयोग सकारात्मक रूप में मूल्य-चेतना के विकास के लिए भी किया जा सकता है। •

राष्ट्रपति कलाम: जनता के राष्ट्रपति

डॉ० अलका आर० गुप्ता

किसी ने कभी सोचा न होगा कि देश के सर्वोच्च संवैधानिक पद पर विराजमान कोई प्रथम गैर राजनीतिक राष्ट्रपति भारतीय राजनीति व समाज को एक नयी दिशा देने जैसा क्रांतिकारी कदम उठाने का साहस कर पायेगा। अमूमन संसदीय प्रजातांत्रिक प्रणाली में राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर ही सभी कार्य करने को अधिकृत एवं बाध्य होता है। संभवतः इसीलिए राष्ट्रपति पद राष्ट्र राज्य के अध्यक्ष रूप में वर्णित है न कि सरकार के अध्यक्ष के रूप में।

यद्यपि समूचा भारतीय शासन राष्ट्रपति के नाम पर चलाया जाता है। संविधान में राष्ट्रपति के लिए तमाम शक्ति व अधिकारों की व्यवस्था की गई है। वह तीनों सेनाओं का कमांडर होता है। संसद के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करता है और देश के सभी विधेयक उसके हस्ताक्षर से ही कानून बनते हैं। इतना ही नहीं, विश्व-पटल पर वह देश का प्रतिनिधित्व करता है। फिर भी यर्थाथ में राष्ट्रपति देश का औपचारिक प्रधान ही होता है। यद्यपि भारतीय संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रपति पद हेतु कुछ विशेष अधिकारों का उल्लेख किया है, जिनका प्रयोग वह विशिष्ट परिस्थितियों में अपने स्वविवेक से कर सकता है। ऐसे में इन सजावटी शक्तियों से सजे राष्ट्रपति पद के भारतीय इतिहास में निवर्तमान राष्ट्रपति डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम का योगदान उल्लेखनीय एवं अनुकरणीय है।

वर्ष 2002 में निर्वाचित राष्ट्रपति डॉ० कलाम मूलतः एक वैज्ञानिक, तकनीक व रक्षा विशेषज्ञ थे। तत्कालीन एन० डी० ए० सरकार द्वारा प्रस्तावित

एक गैर राजनीतिक नाम पर अनेक संदेह व्यक्त किये गये थे, किन्तु पाँच वर्ष के उनके कार्यकाल का विश्लेषण करने पर यह बात सामने आयी है कि उन्होंने राजनीतिक पृष्ठभूमि के राष्ट्रपतियों से कहीं बेहतर तरीके से काम किया है।

डॉ० कलाम एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने पाँच वर्षों के कार्य-कलापों से भारत के राष्ट्रपति पद को न केवल पुनर्परिभाषित किया वरन् देश के सभी-वर्गों से खासकर “आम जनता” से खुद को करीब से जोड़ा। उन्होंने राष्ट्रपति भवन में एक बार छह हजार किसानों को बुलाया, फिर दो सौ पुलिस वालों को, डाकियों और गाँव के सरपन्चों को आमंत्रित किया। उनसे बातचीत की और उनकी समस्याओं को सुना व समझा। सम्भवतः इसीलिए राष्ट्रपति भवन को उन्होंने “जनता का भवन” कह कर सम्बोधित किया है। छात्रों व युवाओं के प्रति विशेष अनुराग प्रदर्शित करते हुए डॉ० कलाम ने उनसे अनेक बार मुलाकात की और अपने बहु-प्रचलित “विजन २०२०” का लक्ष्य उनके सामने रखा तथा विस्तार में व्याख्या भी की कि किस प्रकार युवाओं की प्रतिभा व लगन से भारत वर्ष 2020 से पहले एक विकसित राष्ट्र में परिवर्तित हो सकता है।

एक युगदृष्टा के रूप में डॉ० कलाम ने “विजन 2020” के माध्यम से एक नये, समृद्ध व खुशहाल भारत की परिकल्पना की है- जहाँ कोई गरीबी, निरक्षरता व अपराध नहीं होगा, जहाँ ग्रामीण व शहरी भेद शून्य होगा, जहाँ सभी को पर्याप्त मात्रा में साफ पानी व बिजली मिलेगी, जहाँ कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र साथ-साथ मिलकर कार्य करेंगे, जहाँ

सरकार उत्तरदायी, पारदर्शी व भ्रष्टाचार-मुक्त होगी, जहाँ कोई भी प्रतिभाशाली छात्र सामाजिक या आर्थिक भेदभाव के कारण शिक्षा से वंचित नहीं होगा, जहाँ सभी के लिए बेहतरीन स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध होंगी, जहाँ हुनरमंद वैज्ञानिक, विद्वान व व्यापारी आना सर्वाधिक पसंद करेंगे और भारत निरंतर विकास पथ पर चलते हुए स्वस्थ, सुरक्षित और शान्तिपूर्ण राष्ट्र की स्थापना करेगा।

किसी कल्पनावादी चिन्तक की भांति डॉ० कलाम ने अपने विचारों को केवल आदर्श तक सीमित नहीं रखा है अपितु यथार्थ में परिणित करने के लिए एक योजना-रूपरेखा तैयार की है। उन्होंने भारत के ऐसे पाँच क्षेत्रों को चिन्हित किया है जहाँ अपार क्षमता व संभावनाएं हैं- (1) कृषि एवं खाद्य (2) शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधा (3) सूचना एवं संचार तकनीक (4) आधारभूत संरचना बिजली व सड़क (5) तकनीकी आत्म-विश्वास। ये पाँच क्षेत्र अन्योन्याश्रित हैं। यदि भारत ने इन्हें समन्वित रूप में विकसित किया तो केवल खाद्य व आर्थिक सुरक्षा ही नहीं अपितु राष्ट्रीय सुरक्षा में भी भारत अग्रणी देश होगा।

हालांकि वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था उत्तरोत्तर प्रगतिशील है और जीडीपी लगभग नौ प्रतिशत की दर से प्रति वर्ष बढ़ रही है। फिर भी यह प्रगति ग्रामीण जनजीवन के संरचना में स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होती। ऐसे में डॉ० कलाम ने भारत की एक अरब जनता के चेहरे पर मुस्कान लाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव विकास सूचकांक की तर्ज पर राष्ट्रीय समृद्धि सूचकांक (National Prosperity Index NPI) की एकदम नयी धारणा

रखी है। यह मुख्यतः तीन बातों पर आधारित है-

(1) जीडीपी की वार्षिक वृद्धि दर, (2) आम जन जीवन के क्षेत्र जैसे- आवास, पानी, स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा, रोजगार संसाधन, स्वच्छता व पोषण में गुणवत्ता का विकास (3) भारतीय संस्कृति व सभ्यता की विशिष्टता से प्रेरित संयुक्त परिवार व्यवस्था, सामूहिक कार्य करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति, सामाजिक असमानता का समापन, हिंसा-साम्प्रदायिकता-क्लेश रहित सौहार्द्रपूर्ण सामाजिक भावना जैसे मूल्यों का पालन। इस प्रकार भारत के आर्थिक विकास के प्रभाव की समीक्षा व निर्देशन NPI के मानकों के अनुरूप होना चाहिए तभी भारत से गरीबी व अमीरी के बीच की दूरी मिटेगी और विकास का पैमाना लोक कल्याणकारी हो सकेगा।

वास्तव में राष्ट्रपति कलाम ने राष्ट्रपति पद की गरिमा, सौम्यता व नेतृत्व के गुणों को पुनः अर्जित करने में एक बहुत बड़ी उपलब्धि हासिल की है, जो धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थी। शुरुआती दौर में वरिष्ठ व श्रेष्ठ विद्वानों को राष्ट्रपति पद के लिए वरीयता दी जाती थी। देश के प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद अपनी सवैधानिक क्षमता व ईमानदारी के लिए सदैव याद किये जायेंगे। उनके उत्तराधिकारी श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारत को पाश्चात्य आदर्शवादी दर्शन से परिचित कराया और राजनीतिक क्षेत्र में एक दार्शनिक विद्वान के रूप में अपना सर्वोच्च स्थान स्थापित किया। तत्पश्चात् श्री जाकिर हुसैन देश के प्रथम मुस्लिम राष्ट्रपति बने जो राजनीतिज्ञ से ज्यादा विद्वान रहे। इनके बाद राजनीतिज्ञों के राष्ट्रपति नियुक्त होने से पद की गरिमा में गिरावट की प्रवृत्ति आयी जिसका सूत्रपात श्रीमती इंदिरा

गाँधी ने किया था। सबसे शर्मनाक स्थिति तब उत्पन्न हुई जब राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने 25-26 जून 1975 को आधी रात में श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा प्रस्तावित अपातकाल घोषणापत्र पर हस्ताक्षर कर दिये और यह जानने की जरूरत भी नहीं समझी कि कैबिनेट ने अनुमोदन किया है या नहीं। उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी व श्री एन० संजीव रेड्डी शुद्ध रूप से राजनीतिज्ञ रहे, जिन्होंने कांग्रेस के विघटन में दलबंदी की महती भूमिका निभायी। तत्पश्चात् राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैल सिंह ने पद की प्रतिष्ठा को ठेस लगाने में सर्वाधिक अंक हासिल किये। जब उन्होंने सार्वजनिक रूप से यह कहा कि प्रधानमंत्री (श्रीमती इंदिरा गाँधी) चाहे तो वह कुछ भी करने को तैयार हैं। फिर राष्ट्रपति पद पर विराजमान हुए श्री आर० वेकटरमन जो संवैधानिक विशेषज्ञ होते हुए भी अपने कार्यकाल में कुछ अलग न कर सके। नब्बे के दशक में नियुक्त राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा का पद पर पहुँचना एक पुरस्कार स्वरूप था क्योंकि उन्होंने कांग्रेस नेतृत्व के सन्दर्भ में श्रीमती इंदिरा गाँधी को समर्थन दिया था। डॉ० कलाम से ठीक पूर्व राष्ट्रपति श्री के० आर० नारायण यद्यपि देश के प्रथम दलित राष्ट्रपति रहे किन्तु कुल मिलाकर वह कमजोर व अप्रभावशाली सिद्ध हुए क्योंकि उनमें स्पष्ट निर्णय लेने का अभाव दिखा।

सादगी व विनम्रता से परिपूर्ण निवर्तमान राष्ट्रपति डॉ० कलाम ने देश के सर्वोच्च पद से जो स्पष्ट व भवि योन्मुख बौद्धिक दृष्टि प्रस्तुत की और एक राष्ट्रव्यापी लक्ष्य व दिशा निर्धारण की, वह इतिहास में दुर्लभ है। उन्होंने यह दिखा दिया कि

राष्ट्रपति पद प्रेरणाशील व प्रगतिशील नेतृत्व का मंच बन सकता है, जो उनसे पूर्व के पद-धारक न सोच पाये और न कर पाये। “जनता के राष्ट्रपति” (People's President) के रूप में स्थापित डॉ० कलाम अपनी उपलब्धता व खुलेपन के स्वभाव से याद किये जायेंगे। उन्होंने देश के सर्वोच्च पद को उत्तरदायित्व के एक नवीन आयाम से आत्मसात कराया।

बच्चों व युवाओं के जीवंत आदर्श बन चुके डॉ० कलाम की राष्ट्रपति पद पर नियुक्ति सहर्ष सहमति व पहली पसंद से नहीं हुई थी। वर्ष 2002 का राष्ट्रपति चुनाव प्रारम्भिक दौर में पूर्व राज्यपाल श्री पी० सी० एलेक्जेंडर, तत्कालीन राष्ट्रपति श्री के० आर० नारायण व उपराष्ट्रपति श्री कृष्णाकांत के बीच की लड़ाई प्रतीत हो रहा था। ऐसे राजनीतिक समीकरणों के मध्य तत्कालीन एनडीए सरकार ने डॉ० कलाम का नाम प्रस्तावित कर सभी को अचरज में डाल दिया। विपक्ष दल कांग्रेस एक धर्म निरपेक्ष दल के रूप में एक मुस्लिम व वैज्ञानिक के नाम का विरोध न कर सकी। दूसरी तरफ श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों के परिप्रेक्ष्य में यह नाम प्रस्तावित किया था क्योंकि मुस्लिमों में असुरक्षा व संदेह की भावना उपज रही थी। इस प्रकार, एक गैर-राजनीतिक राष्ट्रपति का चुनाव बहुत गहरी राजनीतिक दांव-पेंच का परिणाम था। राजनीति से अनभिज्ञ डॉ० कलाम का राजनैतिक कार्य काल उनके व्यक्तिगत गुणों के विपरीत सरल व सहज नहीं रहा। उनकी सबसे बड़ी राजनैतिक त्रुटि मई 2005 में बिहार विधान सभा को भंग करना रहा, जिसकी भर्त्सना पूरे देश में हुयी और

बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने असंवैधानिक भी करार दिया। यद्यपि वह उस समय मास्को में थे और ऐसा केन्द्र सरकार की सलाह पर ही किया था। दूसरा आरोप यह लगा की वह संसद पर आतंकवादी हमले के आरोपी अफजल गुरु की क्षमा याचिका का निस्तारण करने में देरी कर सरकार की इच्छा का पालन कर रहे हैं। हालांकि डॉ० कलाम का हालिया बयान बताता है कि उन्हें कभी इस संबंध में गृह मंत्रालय से कोई प्रपत्र मिला ही नहीं था। राजनैतिक कला-कौशल से अपरिचित रहना ही डॉ० कलाम के लिए हितकर रहा। संभवतः इसीलिए वह किसी राजनीतिक विवाद के भागीदार नहीं बने। उन्होंने अपनी आदर्शवादी व अकादमिक विशिष्टता से पद के कर्तव्य का पालन किया और स्वयं को राजनीतिक उठा-पटक से अलग भी रखा। जैसे उन्होंने लाभ के पद से संबन्धित विधेयक को वापिस लौटा कर सरकार को जता दिया कि उनसे जानबूझकर गलतियाँ नहीं करायी जा सकती हैं।

इस प्रकार, डॉ० कलाम ने अपने पूर्ववर्ती पदाधिकारियों के विपरीत गैर-राजनीतिज्ञ होते हुए भी राष्ट्रपति के पद व कद में न केवल उत्तरोत्तर वृद्धि की अपितु आम जनमानस के मध्य खासी लोकप्रियता भी हासिल की। उम्र के सत्तरवें दशक में प्रवेश करने के उपरांत भी अपने व्यक्तित्व से अदम्य ऊर्जा, साहस व हर समय “कर सकने” (CAN DO) की क्षमता परिलक्षित कर राष्ट्रपति कलाम ने आज के युवा-समुदाय के सम्मुख एक आदर्श-चित्र प्रस्तुत किया है। जो हिम्मत आज तक किसी अन्य राष्ट्रपति ने नहीं दिखायी, वह उन्होंने 74 वर्ष की उम्र में कर के दिखाया। वह भारतीय सेना के ऐसे

प्रथम सर्वोच्च कमांडर रहे जिन्होंने सियाचिन ग्लेशियर जैसे खतरनाक व बीहड़ ऊँचाई पर नियुक्त जवानों से मुलाकात कर उनका हिम्मत संबर्द्धन किया। इतना ही नहीं उन्होंने पनडुब्बी द्वारा समुद्र की गहराई नापी और तो और सुपरसोनिक लड़ाकू हवाईजहाज सुखोई-30 से उड़ान भी भरी। सामान्यतः उम्र के इस पड़ाव पर भारतीय पदाधिकारीगण तमाम सुख-सुविधाओं के उपभोग में लिप्त रहते हैं तथा अपने भविष्य को सुरक्षित करने हेतु जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं। ऐसे में राष्ट्रपति कलाम ने अपनी निरंतर सक्रियता, सकारात्मक सोच व पारदर्शी निष्ठा से राष्ट्र-प्रेम व राष्ट्र-विकास के प्रति अपना सच्चा समर्पण देश के सामने एक उदाहरण की तरह रखा है। यह सत्य है कि डॉ० कलाम के पास राजनीतिक पृष्ठभूमि व राजनीतिक अनुभव दोनों ही नहीं था। फिर भी किसी राजनीतिक मुद्दे पर वह संवैधानिक मर्यादा व स्वविवेक का सुन्दर संतुलन बनाये रखते हुए औचित्य पर आधारित ही निर्णय देने की भरसक कोशिश करते रहे। शायद इसीलिए किसी प्रसिद्ध राजनीतिक प्रवक्ता ने उनके बारे में टिप्पणी की है कि वह राष्ट्रपति के रूप में न तो सक्रिय राजनीतिज्ञ थे और न ही रबड़ स्टैम्प।

राष्ट्र को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखने वाले प्रथम राष्ट्रपति डॉ० कलाम ने नई दिल्ली में सांसदों और चौदह राज्यों के विधायकों के समक्ष पावर-प्वाइंट तकनीक पर आधारित “विजन-2020” विषयक अपना महत्वपूर्ण व्याख्यान प्रस्तुत किया। वह राष्ट्रीय विकास के अपने एजेंडे के प्रति इतने उत्साही व आकांक्षी थे कि उन्होंने अपने कार्यकाल का कोई क्षण या अवसर भी नहीं छोड़ा जब वह देश

के हर वर्ग को भारत को 2020 तक विकसित राज्य बनाने के गुर व उपाय नहीं समझा सके और कार्य करने के लिए अपील न कर सके हों।

निवर्तमान राष्ट्रपति डॉ० कलाम का मानना है कि भारत का राष्ट्रपति राज्य के विकास में महती व सक्रिय भूमिका निभा सकता है। पद कतई भी व्यक्ति मात्र तक सीमित नहीं है। यदि राष्ट्रपति के पास राष्ट्र-विकास के लिए एक दृष्टि है, एक योजना है, एक कार्यक्रम है तो वह बेझिझक उसका जनमानस में प्रचार-प्रसार कर सकता है और निःसंदेह कोई उसका विरोध नहीं करेगा अलबत्ता समूचा राष्ट्र इसका स्वागत करेगा। इसी क्रम में, उन्होंने देश में चल रही राजनीतिक बहस की गुणवत्ता पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि राजनीति मुख्यतः राजनीतिक राजनीति एवं विकास राजनीति (Political Politics and Development Politics) का सम्मिश्रण है। प्रत्येक विधायक व सांसद को अपना सत्तर प्रतिशत राजनीतिक समय विकास पर व्यय करना चाहिए किन्तु दुर्भाग्य से इसका उल्टा स्वरूप प्रचलित है।

निष्कर्षतः निवर्तमान राष्ट्रपति डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम ने अपने उत्तराधिकारी के लिए एक कड़ी चुनौती पेश की है। आधुनिकता व आदर्शवाद का समन्वय करते हुए डॉ० कलाम ने अपनी नवीन सोच, विशिष्ट तकनीक एवं अनूठे प्रयोग से राष्ट्रपति पद की गरिमा को अलंकृत व सुशोभित किया है। अपने पाँच साल के कार्यकाल में उन्हें धर्मनिरपेक्षता के सजीव मूर्त रूप देखा गया है। कहते हैं कि वह कुरान व गीता दोनों का समान भाव व चाव से पठन कर सकते हैं। अब इसमें कोई दो राय नहीं है

कि डॉ० कलाम देश के ऐसे प्रथम राष्ट्रपति हैं जो किसी दल विशेष के नहीं, किसी नेता विशेष के नहीं, किसी परिस्थिती विशेष के नहीं बल्कि जनता विशेष के राष्ट्रपति रहे। इस प्रकार, उन्होंने भारतीय लोकतंत्र की जड़ को न केवल मजबूत किया बल्कि एक रत्न भी जड़ दिया। •

“आखिरकार शिक्षा वास्तव में सत्य की खोज है। ज्ञान और जागरूकता के माध्यम से यह एक कभी न समाप्त होने वाली यात्रा मानवता के विकास के लिए नए परिदृश्य खोलती है। यहाँ ईर्ष्या, घृणा, दुश्मनी, संकीर्णता और असामंजस्य के लिए कोई स्थान नहीं होता। यह मनुष्य को एक हितकारी, उदार इंसान और विश्व का एक उपयोगी व्यक्ति बना देती है। ऐसी शिक्षा के लिए वैश्विक बंधुत्व सही अर्थों में मुख्य अवलंब बन जाता है। वास्तविक ज्ञान मनुष्य की गरिमा और स्वाभिमान को बढ़ाता है। अगर व्यक्ति को सही अर्थों में ज्ञान दिया जाय और मानवोचित कार्यों के प्रत्येक क्षेत्र में उसे कार्यान्वित किया जाए, तो यह विश्व रहने के लिए एक बेहतर स्थान बन जाएगा।”

-डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

वार्षिक रपट (वर्ष 2008-09)
मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र
(MALAVIYA CENTRE FOR ETHICS & HUMAN VALUES)

मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र ने अपने वार्षिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत वर्ष 2008-09 में निम्न कार्यक्रमों का आयोजन किया, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

- (1) विभिन्न वर्गों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन
- (2) विशिष्ट व्याख्यानों एवं संगोष्ठियों का आयोजन
- (3) प्रकाशन

1. विभिन्न वर्गों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन
(अ) विश्वविद्यालय/महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए तृतीय वार्षिक कार्यशाला

विषय- “अकादमिक उत्कृष्टता के लिए, जीवन मूल्य एवं मानवीय क्षमताओं का विकास”

(Human Values and Skills for Academic Excellence)

केन्द्र द्वारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए तृतीय वार्षिक कार्यशाला का आयोजन अगस्त 18 से 24, 2008 की अवधि में सिनेट हाल, स्वतंत्रता भवन में किया गया। इस कार्यशाला में विभिन्न संकायों एवं महाविद्यालयों के कुल 40 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इन प्रतिभागियों में 2 प्रोफेसर, 18 रीडर एवं 20 प्रवक्ता स्तर के थे। कार्यशाला के 28 सत्रों में कुल 42 घण्टे चर्चाएं हुईं। कार्यशाला अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई। मूल्यांकन सत्र में प्रतिभागियों से प्राप्त **Feed back** का सार-संक्षेप निम्नलिखित है :

(i) सभी ने कार्यशाला को उपयोगी और सराहनीय

बताया। कार्यशाला की व्यवस्था, समय-प्रबंधन, कार्यकर्ताओं का व्यवहार, विषय-वस्तु, संवादकर्ताओं की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तुति, मैत्री-भावना का अभ्यास, आदि पक्षों पर सकारात्मक टिप्पणियां की गयीं।

(ii) प्रतिभागियों ने कार्यशाला को बेहतर बनाने के लिए निम्न सुझाव दिए -

a) ऐसी कार्यशालाएं विभाग एवं संकाय स्तर पर आयोजित होनी चाहिए। इसमें वरिष्ठ शिक्षकों, विभागाध्यक्षों एवं संकाय प्रमुखों को भी शामिल किया जाए।

b) कुछ सत्रों में, Panel Discussion, Group Discussion, Case Studies, आदि रखे जाएं।

c) शैक्षिक वृत्ति की समस्याओं और चुनौतियों पर चर्चा हो।

d) कुछ सत्रों जैसे ‘शिक्षक-विद्यार्थी संबंध को कैसे बेहतर बनाया जाय’ में, विद्यार्थियों को भी शामिल किया जाय और उनके विचार भी सुने जायं।

केन्द्र के पूर्व समन्वयक प्रो० अजित नारायण त्रिपाठी जी ने भी निम्न सुझाव दिये -

(i) आज अकादमिक उत्कृष्टता में नए शोध, नए ज्ञान, development projects इत्यादि का महत्व अच्छे शिक्षण से भी अधिक है। पर जहाँ यह कार्य अधिक होता है, वहाँ (विज्ञान संकाय, प्रौद्योगिकी संस्थान, कृषि विज्ञान संस्थान, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, आदि) के शिक्षकों की संख्या नगण्य थी। अतः प्रयास किया जाय कि उनकी भागीदारी बढ़े।

(ii) विभागाध्यक्षों, संकाय-प्रमुखों तथा संस्थान के निदेशकों के लिए अलग कार्यशाला आयोजित करने का सुझाव बहुत ठीक लगता है। पर इसकी विषय-वस्तु क्या हो, कैसे उन्हें कार्यशाला में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाय, आदि पर पहले विस्तार से विचार हो।

(ब) विश्वविद्यालय के कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों के लिए बारहवीं वार्षिक कार्यशाला

विषय- “जीवन मूल्य एवं मानवीय क्षमताओं का विकास”

केन्द्र द्वारा प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी विश्वविद्यालय के सभी संकायों के विद्यार्थियों एवं कर्मचारियों के लिए बारहवीं कार्यशाला का आयोजन सितम्बर 17 से अक्टूबर 24, 2008 की अवधि में मालवीय भवन ‘सभागार’ में किया गया। इस कार्यशाला में कुल 125 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इन प्रतिभागियों में 2 कर्मचारीगण, 23 शोध छात्र/छात्रायें, 25 परास्नातक एवं 75 स्नातक वर्ग के छात्र-छात्रायें थे।

इस कार्यशाला के 28 सत्रों में कुल 56 घण्टे चर्चाएं हुईं। प्रत्येक सत्र दो घण्टे का था। एक घण्टा वक्ता के उद्बोधन के लिए और एक घण्टा प्रतिभागियों की टिप्पणियों एवं प्रश्नोत्तर के लिए निर्धारित था।

कार्यशाला अत्यधिक प्रेरणास्पद सिद्ध हुई। सभी प्रतिभागियों ने इस कार्यशाला में भाग लेने के निर्णय को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण कदम बताया। प्रतिभागियों से प्राप्त Feedback का सार संक्षेप इस प्रकार है -

कार्यशाला के सकारात्मक पक्ष -

(i) कार्यशाला की सबसे अच्छी बात यह लगी कि विभिन्न विभागों के वरिष्ठ आचार्यों के साथ खुलकर संवाद करने का अवसर मिला।

(ii) कार्यशाला ने हमारे सोचने-समझने के दृष्टिकोण को ही परिवर्तित कर दिया है। अब हम नकारात्मक दृष्टि से हटकर सकारात्मक दृष्टि से जीवन एवं जगत को देखने का प्रयास करेंगे।

(iii) कार्यशाला के माध्यम से अपनी मानवीय क्षमताओं को जाँचने-परखने, समझने का अवसर प्राप्त हुआ।

(iv) कार्यशाला की विषय वस्तु अत्यधिक रोचक एवं प्रेरणास्पद लगी। प्रतिभागियों ने जीवन के प्रति सकारात्मक सोच, मैत्री-भावना का अभ्यास, समय-प्रबन्धन, अभिव्यक्ति कौशल, जीवन की सफलता के कुछ व्यावहारिक सूत्र, आदि विषयों को अत्यधिक लाभप्रद बताया।

(v) कुछ प्रतिभागियों के शब्दों में- ‘हमें इस कार्यशाला के माध्यम से सही अर्थों में एक सफल इंसान बनने की प्रेरणा मिली। हमें समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने की सही प्रेरणा मिली।

(vi) कार्यशाला को अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ समाज सेवा के कार्यक्रमों एवं सामूहिक परिचर्चाओं तथा अभ्यास सत्रों की संख्या में बढ़ोत्तरी आदि, पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

कार्यशाला के नकारात्मक पक्ष -

(i) कुछ प्रतिभागियों ने उपस्थिति पत्रक पर दूसरों के हस्ताक्षर किए, जिससे कि उनके साथी को भी भागीदारी का प्रमाण पत्र मिल सके।

(ii) कुछ प्रतिभागियों ने प्रश्नोत्तर एवं समूह परिचर्चा

में खुलकर भाग लिया, कुछ मूक दर्शक बने रहे।

(iii) कुछ ने डायरी लेखन कार्य नियमित किया, कुछ ने औपचारिकता पूरा करने की दृष्टि से ही कुछ लिखा।

(स) सामान्य कार्यशाला से चयनित प्रतिभागियों के लिए चतुर्थ सघन कार्यशाला

विषय- “जीवन मूल्य एवं मानवीय क्षमताओं का विकास”

केन्द्र द्वारा आयोजित वार्षिक कार्यशाला से चयनित प्रतिभागियों के लिए चतुर्थ सघन कार्यशाला का आयोजन नवम्बर 03 से 11, 2008 तक राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय में किया गया।

इस कार्यशाला में विभिन्न संकायों के कुल 20 प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यशाला की 9 दिन की अवधि में कुल 20 सत्रों का आयोजन किया गया। प्रत्येक सत्र डेढ़ घण्टे का था। इस प्रकार कुल 30 घण्टे चर्चायें हुईं। प्रतिभागियों ने सभी सत्रों में दी गयी प्रस्तुतियों को रोचक एवं प्रेरणास्पद बताया। इन प्रस्तुतियों में जीवन में उत्कृष्टता की खोज, बौद्धिक, भावनात्मक, सृजनात्मक एवं नेतृत्व आदि क्षमताओं के विकास, सुशिक्षित होने का तात्पर्य, पारिवारिक जीवन के मूल्य, कैसे एक जिम्मेदार व्यक्ति बना जाए? स्व-प्रबंधन एवं हम और हमारा समाज आदि महत्वपूर्ण प्रस्तुतियां लगीं।

अधिकतर प्रतिभागियों का कहना था कि वे जो कुछ सोचकर इस कार्यशाला में आये थे, उससे कहीं अधिक ज्ञान की प्राप्ति हुई। विश्वविद्यालय में सेमेस्टर पद्धति के लागू होने के कारण अधिकतर विद्यार्थियों की परीक्षाओं की तिथियां नजदीक थीं,

जिस कारण प्रतिभागियों की संख्या कम रही।

उपर्युक्त कार्यशालाओं से निकले हुए प्रतिभागियों ने केन्द्र के पूर्व प्रतिभागियों एवं सदस्यों द्वारा चलाये जा रहे सेवा कार्यों में भी अपना सहयोग प्रदान किया। ये सेवा कार्य हैं-

(i) गरीब एवं असहाय बच्चों के समन्वित विकास हेतु ‘पं० मदन मोहन मालवीय बालचेतना विकास केन्द्र’ द्वारा संचालित शैक्षणिक कार्यक्रम।

(ii) विश्वविद्यालय में अध्ययनरत दृष्टिहीन छात्रों की पाठ्य सामग्री को डिजिटल रूप में परिवर्तित करना।

(iii) पर्यावरण एवं स्वच्छता अभियान हेतु जागृति मिशन का संचालन।

(द) उद्योग एवं प्रबन्ध जगत के अधिकारियों एवं प्रबन्धकों के लिए कार्यशाला

विषय- **Ethics and Human Values for Corporate Excellence**

केन्द्र द्वारा विगत चार वर्ष से उद्योग एवं प्रबन्ध जगत के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया जाता है। इस वर्ग के लिए कार्यशाला के आयोजन के पीछे मुख्य उद्देश्य मानवीय मूल्यों के दृष्टिकोण के आधार पर मानवीय व्यवस्था एवं मानवीय क्षमताओं के विकास की जीवन दृष्टि विकसित करना है, जिससे औद्योगिक जगत के लोगों का एक मात्र दृष्टिकोण अधिक से अधिक लाभ कमाना न हो, बल्कि लाभ के साथ मानवीय व्यवस्था के निर्माण की भूमिका भी हो। इस कार्यशाला में वैश्विक आर्थिक मन्दी के कारण मात्र दो ही औद्योगिक संगठनों भाखड़ा व्यास प्रबन्धन बोर्ड (चण्डीगढ़), इफ्को (लखनऊ) के कुल 4 वरिष्ठ अधिकारियों ने भाग लिया। शेष तीन प्रशासनिक

अधिकारी विश्वविद्यालय परिवार से सम्मिलित हुए।

कार्यशाला के चार दिन की अवधि में कुल 17 सत्र आयोजित किए गये। प्रत्येक सत्र डेढ़ घण्टे का था। इस प्रकार कुल 25 घण्टे 30 मिनट चर्चायें हुईं। इन सभी चर्चाओं को प्रतिभागियों ने अपने विभागीय कार्य एवं व्यक्तिगत जीवन के लिए उपयोगी बतलाया। कुछ प्रतिभागियों का कहना था कि इस तरह की कार्यशालायें उनके वरिष्ठ अधिकारियों के लिए भी होनी चाहिए, जिससे सम्पूर्ण विभागीय व्यवस्था को मूल्यगत स्वरूप प्राप्त हो सके। किसी संगठन के मात्र दो-चार छोटे अधिकारियों के साथ इस तरह की चर्चाएं पर्याप्त नहीं है।

2. विशिष्ट कार्यक्रम

● स्वामी विवेकानन्द जयन्ती (युवा दिवस) पर संगोष्ठी का आयोजन

विषय : भारतीय समाज का नैतिक विकास : स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा

केन्द्र युवाओं के प्रेरणा स्रोत एवं नैतिक मूल्यों के संवाहक स्वामी विवेकानन्द जी के जन्म दिवस (12 जनवरी) पर प्रतिवर्ष एक संगोष्ठी का आयोजन करता है। इस वर्ष संगोष्ठी का आयोजन मालवीय भवन 'सभागार' में 12 जनवरी 2009 को सांयकाल 3 बजे से 5 बजे तक किया गया। संगोष्ठी के मुख्य अतिथि वक्ता स्वामी नीलकण्ठानन्द जी महाराज, रामकृष्ण सेवाश्रम, वाराणसी थे। संगोष्ठी के विषय पर प्रकाश डालते हुए केन्द्र के पूर्व समन्वयक प्रो० अजित नारायण त्रिपाठी जी ने कहा कि सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण सभी जगह भ्रष्टाचार, हिंसा, शोषण जैसी बुराईयां फैलती जा रही हैं। इसलिए आज सर्वाधिक

जरूरत नैतिक विकास की है।

मुख्य अतिथि वक्ता स्वामी जी ने कहा कि भारतीय इतिहास को पढ़ने पर पता चलता है कि भारत में एक बहुत बड़ी आबादी को अपने जीवन की मूलभूत जरूरतों से वंचित रहना पड़ा। कुछ प्रतिशत लोगों ने अपने विवेक एवं शरीरबल के कारण अत्यधिक सुविधाओं का भोग किया और शेष को वंचित रखा, जिसके कारण नैतिकता एवं सामाजिक समानता की स्थापना नहीं हो सकी। इसलिए भारतीय समाज के नैतिक विकास के लिए सर्वाधिक जरूरत है कि सभी को शिक्षा एवं रोजगार तथा समाज में समानता के अवसर प्राप्त हों। स्वामी विवेकानन्द जी ने इसीलिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रो० कमलाकर मिश्र ने की तथा दो छात्र प्रतिभागियों ने भी अपने विचार व्यक्त किये। संगोष्ठी में विभिन्न संकायों के लगभग 150 छात्र/छात्राओं एवं अध्यापकों ने भाग लिया।

3. मूल्य-विमर्श पत्रिका का प्रकाशन :

केन्द्र अपनी विचारधारा व नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर सार्थक संवाद के साथ समाज के शिक्षित एवं प्रबुद्धशाली वर्ग को जोड़ने के लिए 'मूल्य-विमर्श' अर्द्धवार्षिक पत्रिका का प्रकाशन करता है। 12 जनवरी 2009 को पत्रिका के अंक 7 का विमोचन किया गया। 'मूल्य-विमर्श' के इस अंक का विमोचन स्वामी नीलकण्ठानन्द जी महाराज के कर कमलों द्वारा मालवीय भवन 'सभागार' में हुआ। इस अंक के प्रकाशन हेतु आर्थिक सहयोग विश्वविद्यालय स्थित श्री विश्वनाथ मंदिर 'रख-रखाव मद' से प्राप्त हुआ। ●

शिक्षादान-महादान

पूज्य मालवीय जी का मानना था कि 'सामाजिक और अर्थिक उत्थान में शिक्षा की अहम् भूमिका है यह सारी उन्नति का मूलाधार है। इसलिए उन्होंने देश के कायाकल्प के लिए प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक और लघु उद्योग की शिक्षा से लेकर भारी उद्योगों तक की शिक्षा पर काफी गंभीरता से चिंतन किया।'

सन् 1912 के विधान कौंसिल में उन्होंने कहा कि 'दलित वर्गों के उत्थान का प्रश्न शिक्षा पर निर्भर है। समान्य वर्ग के बच्चों के साथ-साथ दलित वर्ग के बच्चों के लिए भी समान रूप से शिक्षा प्रबन्ध हो।' लड़कों की शिक्षा के साथ-साथ लड़कियों की शिक्षा को भी अतिआवश्यक बताते हुए उन्होंने कहा था- "किसी अर्थ में लड़कियों की शिक्षा लड़कों की शिक्षा से भी अधिक आवश्यक है।" समाज के आधे भाग को ज्ञान की ज्योति से वंचित रखना बहुत ही दुःखदायी बात है।

मालवीय जी के उपर्युक्त कथनों से प्रेरणा लेकर मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र से जुड़े हुए अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने अनेक सेवाकार्य प्रारम्भ किये हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य निर्बल एवं असहाय बच्चों के समन्वित विकसित हेतु 'पं० मदन मोहन मालवीय बाल चेतना विकास केन्द्रों' का संचालन करना है। इस केन्द्रों के माध्यम से विभिन्न जिलों के कुछ पिछड़े गांवों के गरीब परिवार की बालिकाओं की शिक्षा हेतु प्रयास किया जा रहा है। गांव में आज भी बालकों की तुलना में बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

सरकार द्वारा चलाई जा रही 'अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा', 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसी योजनाएं बच्चों साक्षरता का प्रमाण-पत्र तो प्रदान कर दे रही हैं, लेकिन उन्हें सही अर्थों में शिक्षित नहीं बना पा रही हैं।

हम कुछ युवाओं ने विभिन्न गांवों के प्राइमरी विद्यालयों में जाकर वहां अध्ययनरत बच्चों से हिन्दी भाषा ज्ञान, सामान्य गणित आदि विषयों से संबन्धित सामान्य जानकारी के संदर्भ में जब बात की तो, अधिकतर बच्चे कोई भी जानकारी नहीं दे सके। इस स्थिति को देखकर हमने कुछ गांवों में गरीब परिवार के बच्चों के समन्वित विकास हेतु 'पं० मदन मोहन मालवीय बाल चेतना विकास केन्द्रों' की स्थापना की है। इन केन्द्रों में हमने मुफ्त शिक्षा, पुस्तकें एवं अन्य सुविधाओं की व्यवस्था की है। अभी तक हमने ऐसे पांच केन्द्रों की स्थापना की है, जिनमें लगभग 200 बच्चे अध्ययनरत हैं। साथ ही 12 अध्यापिकाएं अपना योगदान दे रही हैं। इन केन्द्रों में अध्ययनरत प्रत्येक बच्चे के पठन-पाठन पर 200 रुपये प्रतिमाह खर्च आ रहा है। इस खर्च का वाहन मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र से जुड़े हुए अध्यापकों एवं विद्यार्थियों के आर्थिक सहयोग से हो रहा है।

हम 'नैतिक एवं मानवीय जीवन मूल्यों' की कार्यशालाओं के प्रतिभागियों को समय-समय पर इस ज्ञान यज्ञ से जुड़ने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। जैसे-जैसे लोग सहयोगी बनते जायेंगे, हम इस दिशा में अपने कदम बढ़ाते जायेंगे। •